होशंगाबाद विज्ञान

1 फिट-फिट कब तक
3 मैं मुसलमान हूँ
10 मासिक गोष्ठी से
13 डिस्चिड़िया-पानी भरा कलश
14 कुछ पिटे हुए अनुभव
22 परीक्षा
26 बच्चे फेल कैसे होते हैं
29 सवालीराम
37 परीक्षा की क्या जरूरत है
39 सवाल मासिक गोष्ठी का
41 सांप और हम

अंक 26 शिक्षा व शिक्षकों से संबंधित पत्रिका अगस्त, 198

... परीक्षा पिटाई नकल ट्यूशन और आतंक
क्या यह सीखने की प्रेरणा हो सकते हैं
यदि नहीं तो फिर विकल्प ... ?

संपादन:
हृदयकांत दीवान
राग
गोपाल राठी

सहयोग:
राजेश खिंदरी
ब्रजेश सिंह
घनश्याम
राजेन्द्र बंधु
शोभा शिंगड़े
निशा जैन

चित्र:
कैरन
अर्चना अग्रवाल
राजेश यादव

होशंगाबाद विज्ञान
होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने
तक ही सीमित नहीं है,
बल्कि शिक्षा में नये सोच
और नवाचार का प्रतीक है।

किट किट कब तक

हृदयकांत दीवान

होशंगाबाद जिले में चल रहे विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का बहुत महत्व है, ऐसा कई बार सुना है, कभी मध्य प्रदेश संदेश में, कभी जब कोई विशेषज्ञ दल आता है मध्य प्रदेश में शिक्षा-अवलोकन करने । राष्ट्रीय स्तर पर भी इस बात को कहा जाता है कि विज्ञान सीखने के लिए प्रयोग जरूरी हैं और नई शिक्षा नीति के प्रपत्र में कहा गया है कि बच्चों को रटवाना नहीं चाहिए । वरन् उन्हें सोचने, समझने व करने के लिए कहा जाना चाहिए । इन सब को कहने के लिए सेमिनार होते हैं । कार्य शालाएं होती हैं । विशेषज्ञ दूर-दूर से आते हैं । यह सब आवश्यक हैं लेकिन क्या इससे भी आवश्यक यह नहीं है कि इन सब को करने के लिए बुनियादी ज़रूरतें मुहैया हों ।

पिछले तीन साल से होशंगाबाद जिले की किसी भी माध्यमिक शाला में किट की क्षतिपूर्ति नहीं हुई । कारण, जब पिछले दो साल नहीं हुई तो अब क्यों । पर पिछले दो साल क्यों नहीं हो पाई ? हालात ये हैं कि हर मासिक गोष्ठी में मांग होती है कि किट दी जाए । किट के बिना प्रयोग करवाना संभव नहीं है । किट न मिलने से हमारी दिक्कतें और बढ़ जाती हैं और हिम्मत टूटती है । यदि शासन को यह पद्धति चलानी है, तो किट देना चाहिए ।

और किट कोई बहुत ज्यादा नहीं मात्र 80,000 रू० वार्षिक जिले भर के लिए लिए । इस 80,000 रू० खर्चे का मतलब

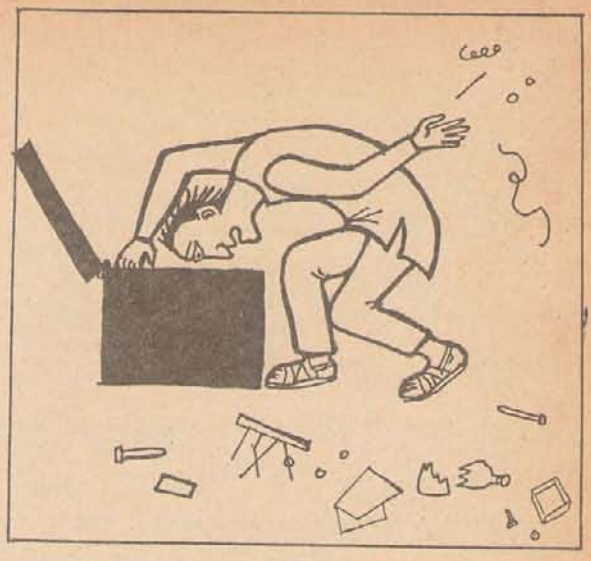

30,000 से अधिक बच्चे वर्ष भर में 100 से भी अधिक प्रयोग करेंगे । यही नहीं, सीखने की उस पद्धति से जिसमें प्रयोग व विषय वस्तु एक दूसरे में गुथे हुए हैं ।

किट का यह अभाव आज की परिस्थितियों में शिक्षकों को प्रयोग करने के लिए, करवाने के लिए प्रोत्साहित करने के स्थान पर उनके इस दिशा में प्रयास में भी रोड़े अटकाता है।

यहां यह बता देना उचित होगा कि प्रयोग करवाना सरल काम नहीं है उसके लिए किट छांटना, कक्षा में ले जाना, इकट्ठी करना, वापस लाकर करीने से जमा कर रखना । यह सब एक शिक्षक की जिम्मेवारी बन जाती है। यदि "तू पढ़" तरीके की तुलना इससे की जाए तो इसमें शिक्षकों की मुश्किल साफ सामने आती है । लेकिन क्या किट न देना इस समस्या का हल है और शिक्षकों के लिए मदद है । हां एक तरह से है भी । वह पुरानी कहावत, न रहे बांस न बजे बांसुरी। जब किट ही नहीं होगी तो शिक्षकों को प्रयोग करवाने के लिए कौन कह सकेगा ।

संभागीय कार्यालय, संचालनालय और वल्लभ भवन के शिक्षा व वित्त विभाग

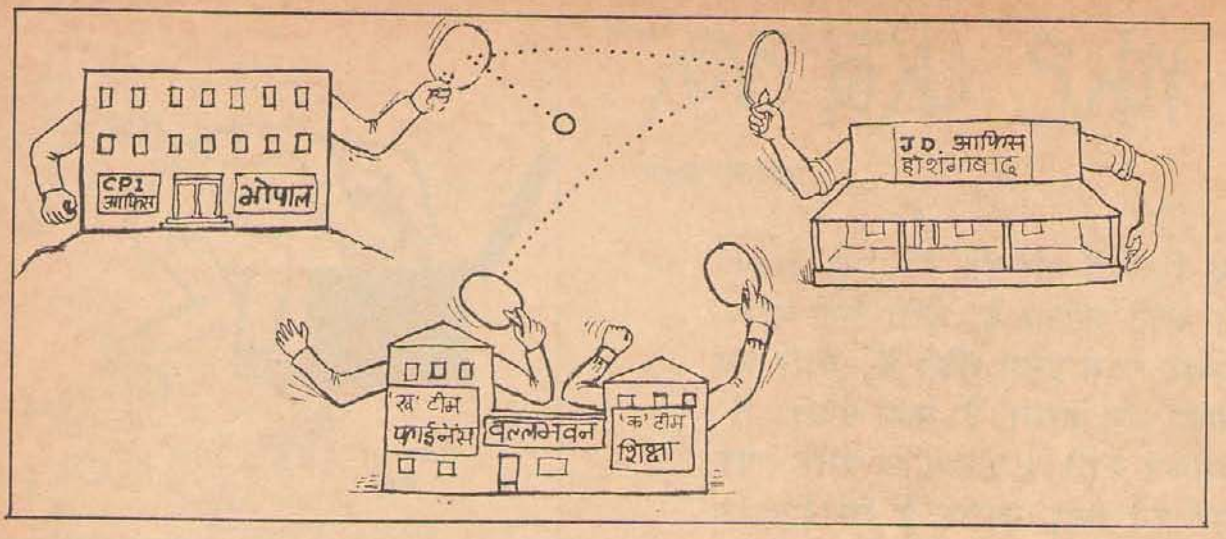

के बीच क्षतिपूर्ति प्रस्ताव को गेंद मान कर खेले जा रहे टेबिल-टेनिस मैच में कौन जीतेगा मालूम नहीं । लेकिन हारेंगे वह सिद्धांत, जिन्हें राजीव गांधी से लेकर सभी छोटे-बड़े नेता और सभी के सभी शिक्षाविद् सभी दोहराते हैं । ठीक वैसी ही रट्टू तोतों की तरह जैसे शायद हम बच्चों को वास्तव में पढ़ाना चाहते हैं । इस वर्ष भी जैसी उम्मीद थी, किट नहीं मिली । अब 1988-89 का सेट शुरू हो गया। आशंका, निर्णयों की गेंद फिर इस पाले से उस पाले में फेंकी जाएगी और महामहिम राजा खेलते रहेंगे बच्चों के भविष्य से ।

इसका यह मतलब नहीं है कि प्रशासन में लोग किट देने के खिलाफ हैं और इस खिलाफत को व्यक्त कर रहे हैं । यदि ऐसा होता तो वह भी एक स्पष्ट कदम होता । वह तो अधिकांश और कार्यों की तरह इसके प्रति उदासीन हैं और इसलिए निर्णय लेने का प्रश्न ही नहीं उठता । कौन निर्णय ले और गर्दन फंसाए । हमें आखिर इस किट से लेना- देना ही क्या ? हमारे बच्चे तो वहां पढ़ नहीं रहे । क्या मालूम कब कोई नया सवाल पूछ ले ?

प्रशासन में यह डर पैठता जा रहा है, समाता जा रहा है । उनकी अपने निर्णय लेने की क्षमता लगातार कम होती जा रही है । और जब ऐसा होगा तो क्या कुछ भी नया हो सकता है ?
यदि प्रशासन को विकेन्द्रित करने का ढांचा बनाया जाता है जिससे कि स्थानीय स्तर पर उत्साह को उभारा जा सके, बचाया जा सके तो यह अतिरिक्त कड़ी इसका बिल्कुल उलटा करती है । चूंकि निर्णय तो अभी भी उस स्तर में होंगे जहां पहले होते थे हां एक forwarding authority जरूर बढ़ गई ।

एक प्रधान पाठक जो जिला शिक्षा अधिकारी से अनुमोदन ले रहे थे कि हमें अलमारी खरीदना है, कुछ मरम्मत करवाना है। क्या हम क्रय समिति के इस प्रस्ताव के अनुसार काम कर सकते हैं, तो बताया गया कि आवेदन ब्लाक शिक्षा अधिकारी के माध्यम से आना चाहिए । प्रधान पाठक थोड़ा हताश तो हुए लेकिन हंस कर कहने लगे "पहले तो एक ही खसम था अब दो हो गए ।" ।

मैं मुसलमान हूँ

मेरा धर्मग्रंथ कुरआन है । धर्मग्रंथ के रूप में वह पवित्र है । मैं उसे पढ़ नहीं पाता फिर भी मेरा उस पर विश्वास है । संभव हो, तब खैरात भी करता हूं । मुसलमान मिल जाए जाए, तो वह केवल मुसलमान है, इसलिए आत्मीयता से बात करता हूं । मुझे पता है कि मेरे वक्तव्य में विसंगति है । फिर भी मैं मुसलमान हूं क्योंकि मुसलमान होना भी जन्म पर ही आधारित होता है । सही देखा जाए तो धर्मान्तर करना स्वधर्म का स्वीकार करना होता है पर ऐसा माना नहीं जाता । कोई दिक्कत न हो इसलिए जो माना जाता है, उसे मैं भी मान लेता हूं । पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं चौबीसों घन्टे मुसलमान ही होता हूं । मौत, विवाह, ईद, जन्म आदि अवसरों पर ही मैं मुसलमान होता हूं ।

जहां-जहां मेरी जमात मुझ से सवाल पूछ सकती है, वहां-वहां मैं मुसलमान होता हूं । जब मैं नमाज़ को नहीं जाता, खैरात

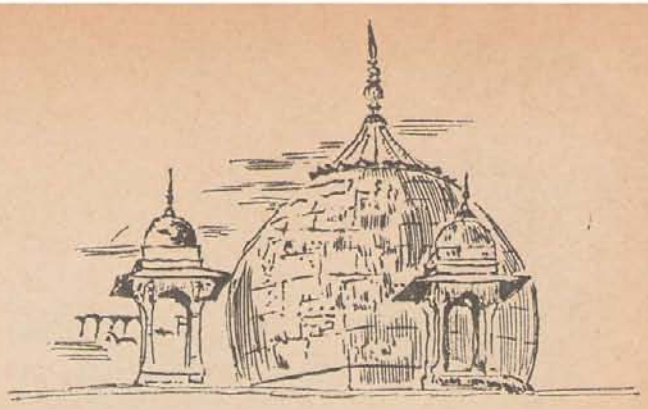

नहीं करता, रोज़ा नहीं रखता, लोगों से ब्याज लेता रहता हूं, अर्थात् जब मैं स्वार्थ रक्षा करता रहता हूं तब मैं मुसलमान नहीं रहता, एक सामान्य मनुष्य मात्र होता हूं । और जब मैं बेहद अकेला होता हूं, तब तो मैं कुछ भी नहीं होता ।

मन की बातें, बहुत भीतरी मन की बातें कहना तो मुश्किल ही हो गया है । फिर भी कभी-कभी मनुष्य भीतर की बात कह ही देता है । जैसे ईश्वर के अस्तित्व की बात है । अगर वह सचमुच हो, तो ऊपर जाने के बाद परेशानी न हो, इसलिए चुपचाप ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकारने में हर्ज़ क्या है ? ईश्वर तथा उससे संबंधित अन्य बातें करनी पड़ती हैं । ठीक है, बेकार में दिमाग़ को तकलीफ़ न हो । दोनों डगर पर पैर रखना धोखा देता है, यह मालूम होते हुए भी मैं दोनों ओर पैर रखता हूं । इसी कारण तो ईश्वर को कभी प्यार करता हूं । और कभी गालियां भी देता हूं ।

मतलब यह कि हम लोग किसी-न-किसी भय से जीते रहते हैं । मेरी बिरादरी का प्रमुख जब चंदा मांगता है, तो "ना" कहने की मेरी हिम्मत नहीं होती । वह अगर बहिष्कृत कर दे तो ? बेकार की किचपिच ।

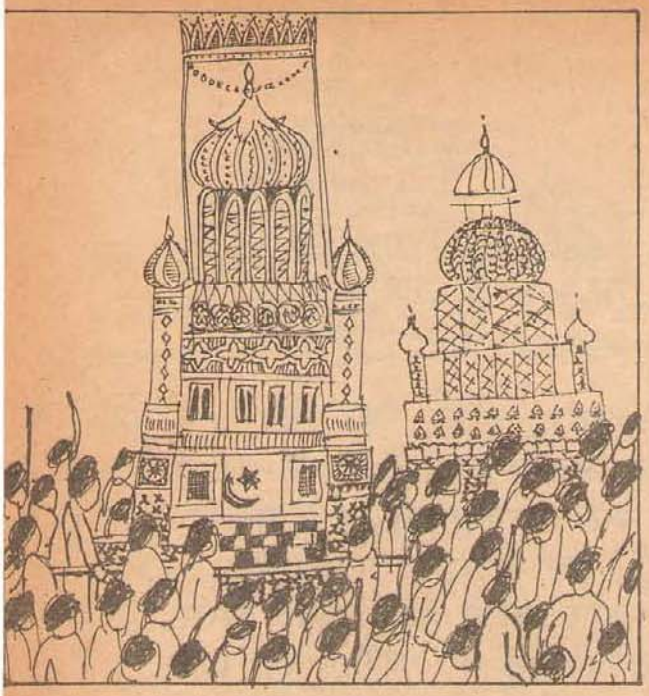

जनता सरकार के समय तबलीम-ए जमात ने देहातों-देहातों में घूमकर काफी परेशान किया था । नमाज़ पढ़ो, कम-से-कम 40 दिन तबलीग-ए-जमात के साथ रहो, फ़लां मुस्लिम हो गया, काफ़िरों की ईद नहीं मनाना, कृषि से संबंधित त्यौहार नहीं करना, न राखी बांधना और न बंधवाना-ऐसे सैकड़ों उपदेश दिये जाते थे । मुझे भी दिये गये । मुझे अधिक धार्मिक बनाने का प्रयत्न हुआ । इनमें से कुछ उपदेशों को मुझे स्वीकारना पड़ा । पराये धर्म का व्यक्ति जब मेरा धर्म स्वीकारता है, तो पता नही क्यों मुझे खुशी ही होती है । मेरे धर्म के किसी व्यक्ति के महान कार्य से मेरा गला भर आता है । बुरका, ईद, मस्जिद देखकर मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि मैं मुसलमान हूं।

मेरे विभाग के एक हिन्दूवादी नेता जब अपने व्याख्यानों में यह कहते हैं कि मुसलमानों को डालडा के डिब्बे में पैक करके पाकिस्तान भिजवा देना चाहिए, तब मैं सचमुच बहुत डर जाता हूं क्योंकि मैं मुसलमान हूं । पढ़े - लिखे लोग जब सामान्य मुसलमानों को "लांड्या", "मुसल्ला," आदि तुच्छतापूरक शब्दों से संबोधित करते हैं, तब भी मुझे डर लगता है । जब भी कोई सामान्य देहाती शराब पीकर कहने लगता है कि "मेरा बस चले तो अपने गांव में दवा के लिए भी मुसलमानों को ज़िन्दा नहीं रखूंगा" , तब भी मुझे डर लगता है । जब पाकिस्तान और भारत में तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है तब भी मैं भय-भीत हो जाता हूं । गणेशोत्सव, शिवजयंती, जनजागरण, मोहर्रम, रमजान जैसे अवसर आते हैं, तो मैं सोचता हूं पता नहीं क्या होने वाला है ? जनतंत्र के होते हुए भी जब बहुत ही कायदे से लाठी-प्रदर्शन शुरू हो जाता है, तब भी मुझे डर लगता है । गाय, मूर्त्ति, सूअर, बाजा आदि के कारण जब-जब देश के किसी भी हिस्से में झगड़े शुरू हो जाते हैं तब तो मेरी नींद गायब हो

जाती है । "मैं हिन्दू हूं और मुझे इसका अभिमान है" शीर्षक के छोटे-छोटे पर्चे जब बंटने लगते हैं तब भी मैं डर जाता हूं । मज़ाक के नाम पर जब मुझे "अंतुले" नाम से संबोधित किया जाता है तब भीतर-ही-भीतर छटपटाने लगता हूं । आर्य-समाजी पंडित धर्मप्रवचन करते-करते पता नहीं क्यों, कब, मुसलमानों के ख़िलाफ़ बोलने लगते हैं, तब भी मैं बैचेन हो जाता हूं ।

एक अनाम डर मेरे भीतर समा गया है । यह डर सकारण है पर कई बार बे-मतलब भी होता है । डर है, यही बहुत बड़ा सच है और इसका कोई इलाज नहीं है । कइयों ने कई सुझाव दिये पर स्थिति में कोई ख़ास फ़र्क नहीं आया । संभवत: १९९९ तक यह स्थिति रहेगी क्योंकि किसी फ्रेंच ज्योतिषी ने यह घोषित किया है कि १९९९ में हिन्दू धर्म विश्वधर्म हो जाएगा । दुनिया के और धर्म खत्म हो जाएंगे, होंगे भी शायद ।

कभी मैंने एक नाटक देखा था, नाम था "सगे भाई, पर एक-दूसरे के बैरी" । बस हिन्दू-मुसलमानों की स्थिति ऐसी ही है । विभाजन के बाद भी दंगे बढ़ ही रहे हैं । इन दंगों से सार्वत्रिक हानि आम हिन्दुओं-मुसलमानों की ही होती है ।

क्या कभी अपने पढ़ा है कि कट्टर हिन्दुत्ववादी अथवा कट्टर मुसलमान अथवा इन दोनों का कोई नेता दंगे में मारा गया है ? मतों के लिए दंगे करवाने पड़ते हैं । आर्थिक लाभ के लिए दंगे करवाने पड़ते हैं । कानूनन जो काम नहीं हो सकते, उन्हें करवाने के लिए दंगे करवाने पड़ते हैं ।

हिन्दुओं के डर से हम मुसलमान जीते रहें तथा मुसलमान इस देश का सत्यानाश करेंगे, इस डर से हिन्दू जीते रहें- यह क्रम चलता रहने वाला है ।

अभी कुछ माह पूर्व शिवाजी की मूर्त्ति को किसी देहात में किसी ने खंडित कर दिया । परिणाम--बन्द का आव्हान । उस दिन प्राध्यापक-कक्ष में चाय पीते हुए मैंने पूछा- "किसने खंडित की होगी वह मूर्त्ति ?" किसी ने जवाब दिया --"मुसल-मान के सिवा और कौन होगा ?" मैंने कहा, "संभव है । पर यह किसी छोटे-से देहात में हुआ । गुनाहगार का पता तो चला ही होगा । उसे पकड़ा भी गया होगा ।" पता चला कि इस संबंध में विस्तार से किसी को कुछ भी नहीं मालूम। पता लगवा लेने की किसी को इच्छा भी नहीं । शिवाजी महाराज की मूर्ति खंडित हो गई, बस, इतनी बात काफी थी ।

पिछले मार्च/अप्रेल में आयोजित एक शिविर की याद आ रही है । राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर आमंत्रित वक्ता का व्याख्यान हुआ । "एकता और मुस्लिम प्रश्न का गहरा संबंध है ।" वक्ता बोल रहे थे ।

एक सहयोगी ने कहा कि "मुसलमानों को भयभीत होने जैसी कोई बात ही नहीं है ।" यह सुनकर मुझसे रहा न गया । मैंने कहा "ऐसा तुम नहीं कह सकते ।" इस पर दो-एक ने चिल्लाकर कहा --"उठो, उठो, माइक पर ही बोलो ।

मैं उठा, मेरे दूसरे सहयोगी श्री श्राफ ने कहा --"उठ गया••• औरंगज़ेब ।" इस पर पर सब हंसते रहे । तो श्राफ ने कहा " मैं केवल सब को हंसाने के लिए ऐसा कह गया•••" और मैंने कहा - "हां, यही तो वह वृत्ति है ।" बकरी की मौत तो हो ही जाती है।

एक अनुभव आपको सुनाता हूं । कुछ दिन पहले मेरे एक अध्यापक मित्र ने पूछा था--

"पाकिस्तान क्रिकेट में हार गया, यह खबर सुनकर तुम्हें निश्चित रूप से बुरा लगा होगा, क्यों ?" पहले तो उसके इस प्रश्न की मैंने उपेक्षा की । फिर से उसने वही प्रश्न किया । फिर भी मैंने उत्तर देना टाला । उस प्रश्न के भीतरी ज़हर को मैं जानता था । अगर मैं कहता कि नहीं भाई, मुझे बुरा क्यों लगेगा ?, तो विश्वास नहीं किया जाता । और अगर "हां" कहता तो मेरी सार्वजनिक धुलाई के लिए वह बाहें कस लेता । इस कारण उसके इस प्रश्न का उत्तर न देते हुए मैंने इतना ही कहा कि "जिस कान्होजी ब्राह्मण ने शिवाजी के पुत्र संभाजी को शत्रु के हवाले कर दिया था, उसकी औलाद से मैं राष्ट्रनिष्ठा सीखना नहीं चाहता ।"

मेरे इस उत्तर से वह दुखी हो गया मैं जानता हूं परन्तु उसके इस प्रश्न से मेरी भी वैसी ही स्थिति हो गयी थी न ! ऐसे कई प्रसंग मैं झेल चुका हूं । मुझ जैसे शिक्षित की यह स्थिति है, तो अशिक्षित मुस्लिम की स्थिति की आप कल्पना कर सकते हैं । इसलिए यहां मुसलमानों की डरने जैसी स्थिति नहीं है-- ऐसा कहना निरर्थक है ।

उस प्राध्यापक ने मुझसे उपर्युक्त प्रश्न पूछ लिया क्योंकि वह हिन्दू है ।

परस्पर भिन्न धर्म में जीने वाले युवक-युवती कुछ नया, अभिनव कर दें, तो उनका अपना धर्म तो डूबता नहीं पर उनके

धर्मावलम्बियों को तो लगता है कि धर्म अथवा मज़हब डूब रहा है । पाकिस्तान और भारत में युद्ध छिड़ गया कि पूरे देश में पाकिस्तानी जासूस दिखने लगते हैं और उनकी खोज कोई भी कहीं भी कर लेता है । हिन्दुओं के मंदिर पर अचानक हरा झंडा दिखाई देने लगता है और प्रति-शोध की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है । एक-दो के कारण सारी जमात ही खतरे में आ जाती है ।

लोकमान्य तिलक से मुहम्मद अली जिन्ना ने कभी कहा था कि-"हिन्दू मुस्लिम समस्या को सदा के लिए समाप्त कर देने का उपाय मेरे पास है ।" तिलक ने पूछा, "कौन सा उपाय ?" जिन्ना ने कहा था कि-"हिन्दू और मुस्लिम सनातनियों-पंडितों, मुल्ला-मौलवियों को दो पंक्तियों में खड़ा कर दिया जाए । आप (तिलक) हिन्दू सनातनियों को और मैं (जिन्ना) मुल्ला-मौलवियों को गोली से भून देंगे । देखिए, फिर समस्या खत्म ।" बात तो पते की थी पर दोनों ही इस पर अमल नहीं कर पाये ।

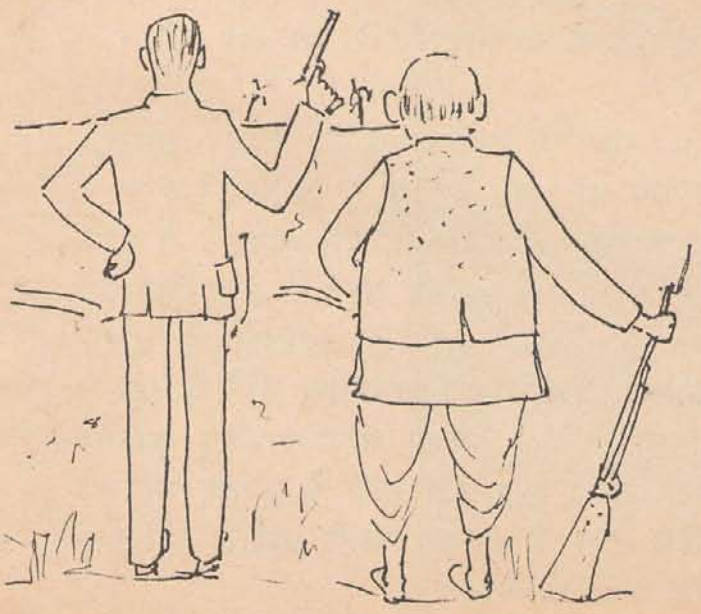

सनातनी, प्रतिगामी वृत्ति भयंकर होती है । वह कब किस बात पर उतर आएगी, कोई गारन्टी नहीं होती । अब यही देखिए कि मैंने अपने खेत पर शकूर नामक सैयदाना घराने के एक युवक को काम पर रख लिया था । दो साल वह काम करता रहा पर तीसरे साल उसने अचानक ना कह दिया । मैं कारण नहीं जान पा रहा था और वह भी बता नहीं रहा था । औरों से पता चला कि वह कह रहा था "हम सैयद घराने से ताल्लुक रखते हैं और ये हलकी जात के मुसलमान हैं । मुझे अभी मालूम हुआ, इस वास्ते मैं इस साल "ना" बोला ।"

यह सनातनी वृत्ति सामान्य-से-सामान्य मुसलमानों में है । ऐसी ही वृत्ति का पता उस दिन भी चला जिस दिन मैं विट्ठल- मंदिर जाकर "ज्ञानेश्वरी" पर व्याख्यान दे रहा था, व्याख्यान क्या कीर्तन कहिए । मंदिर से वापस जाकर मैं खाना खाने बैठा तो मां कहने लगी --

"औ, तू मंदिर क्यों जाता है भला ।"

"बू, मेरा जो अभ्यास है वोच में वहां बोलता हूं ।"

"मगर वहां जाकर कुंकू (कुंकुम) लगाते हैं कते ।"

"नहीं बाबा, लगाते नै । आए तो बी मैं गलकू लगाव बोले तो वो गले-कूच लगाते हैं ।"

"पर काएकू जाने का ? कुछ मुसलमानों के छोरा तुझे मारने वाले हैं क्ते ।"

"कौन हैं वो ? मुझे तो कुछ भी मालूम नै ।"

"मगर ऐसा कायकू करने का रे बाबा ।"

"भला, भला देखेंगे के कौन मारते ऐसा ।"

इस संभाषण के बाद भी मैं कई बार मंदिर में जाता रहा । ज्ञानेश्वरी का अध्ययन करता रहा ।हिन्दुओं ने मेरी प्रशंसा ही की है । यूं अंधों में काना राजा वाली कहावत है । देहात में ज्ञानेश्वरी पर इतना बोलने वाला महान ही होता है । पर मैं यह भी जानता हूं कि मेरी अधिक प्रशंसा इसलिए होती है क्योंकि मैं मुसलमान हूं ।

मैं कई बार सोचता हूं कि रात-दिन "मुसलमान-मुसलमान" कहने की आवश्यकता ही क्या है । जहां 100 में से 12 मुसलमान हैं,वहां शेष 88 पर गंभीरता से विचार न करते हुए केवल मुसलमान-मुसलमान कहना, अब छोड़ देना चाहिए । पर यह कहना जितना आसान है, करना नहीं । मेरे मित्र श्री श्राफ ने इसका बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है । उन्होंने कहा कि मुसलमान के विरोध में ही हिन्दू एक हो सकते हैं ।

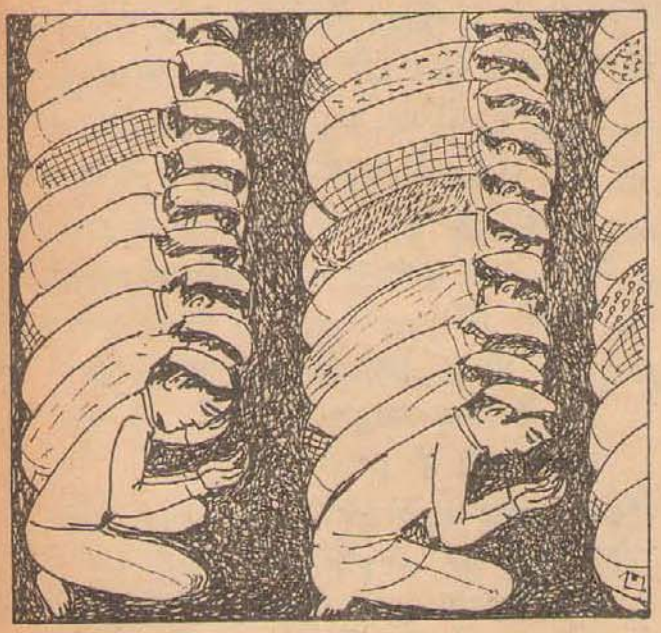

हिन्दुओं की एकता के लिए मुस्लिम-विरोधी भूमिका लेना जरूरी हो जाता है । मुसलमानों का क्या होगा, इसका विचार हम क्यों करें, हमें हमारी पड़ी है । सही है उनकी बात। जनतंत्र की रट लगाओ, राष्ट्र-निष्ठा का आलाप करते रहो, देश प्रेम उपजाते रहो, संस्कृति-रक्षा की बात करते रहो । जो बिना प्रयत्न के हो सकता है । वह करते रहो--यह तो सार्वत्रिक सूत्र ही बन गया है ।

इसी सूत्र के कारण इन दिनों मैं गहराई से सोच रहा हूं कि इस देश में मैं कहीं अजनबी तो नहीं हूं ? जहां मुस्लिम बहुसंख्यक हैं, वहीं पर कुछ उत्सव अधिक उत्साह से क्यों मनाये जाते हैं ? इस सूत्र से इसका पता चल जाता है । शिवाजी महाराज, गणेश, गाय के संबंध में भले ही कुछ पता न हो तो भी हज़रत के पवित्र बाल की तरह हम उसका राजनीतिक उपयोग कर ही लेंगे ।"यह क्या तमाशा है कि अल्पसंख्यक होते हुए भी तुम सिर उठाते हो ? यह हम चलने नहीं देंगे ।"

प्राध्यापक यह कहने लगे थे कि अंतत: शहाजिन्दे अपनी जाति पर ही गये ।

यहां मैं प्राध्यापक हो गया, इसका कारण भी यही है कि मैं मुसलमान हूं । मुसलमान होते हुए भी मैंने मराठी से एम॰ ए॰ किया और इसी बात से प्रभावित हो कर एक नेता ने मेरी सिफ़ारिश की थी । मतलब, कभी-कभी मुसलमान होने के फायदे भी होते हैं । परन्तु यहां का हर मुसलमान मेरी तरह खुशनसीब नहीं है । वह मराठी बोल लेता है परन्तु उसकी प्रशंसा कौन करे ?

भारत एक हिन्दू राष्ट्र है--यह एक सच है और मुसलमान समाज पर जिनका प्रभाव है, उन तथाकथित नेताओं को यह बात जितनी जल्दी समझ में आ जाए, उतना ही अच्छा है । मैं ही इसे कहने वाला था, पर क्या करूं ? हिन्दुओं में मैं विदेशी हूं और मुसलमानों में भी नकारा गया हूं । न मैं पूरा मुसलमान हूं और न पूरा हिन्दू । इसके अलावा राष्ट्रीय, प्रगतिशील आदि विशेषण मैं लगाता नहीं हूं या कोई मेरे नाम के साथ नहीं लगाता है । ऐसे विशेषण मुझे भाते भी नहीं हैं । सनातनियों के बीच में अपनी प्रगतिशीलता को छिपाता हूं, और प्रगतिशीलों के बीच मैं सनातनियों की ओर से बोलता हूं । परिणामत: मैं फुटबॉल हो गया हूं । दोनों रास्तों पर पैर रखने वालों का और क्या होगा ?

इससे हुआ यह है कि बस-यात्रा में कोई भी हिन्दू, मुझे हिन्दू समझकर ही बातचीत करता है । ऐसी बातचीत में जब मुसलमानों का विषय निकलता है तो मुसलमानों को पचासों गालियां देने लगता है । मुसलमान कितने खतरनाक और अराष्ट्रीय होते हैं--इसकी कहानियां सुनाता है । अपनी यात्रा खत्म होने पर मैं उसे धीरे से कहता हूं कि मैं भी एक मुसलमान हूं । तब उसका चेहरा देखने लायक हो जाता है । ऐसा चेहरा देखने का भाग्य मुझे ही मिल सकता है क्योंकि मैं मुसलमान जो हूं ।

मूल लेखक : फ.म. शहाजिन्दे
मराठी से अनुवाद : डा. सूर्यनारायण रणसुभे
'संवेदना' से साभार

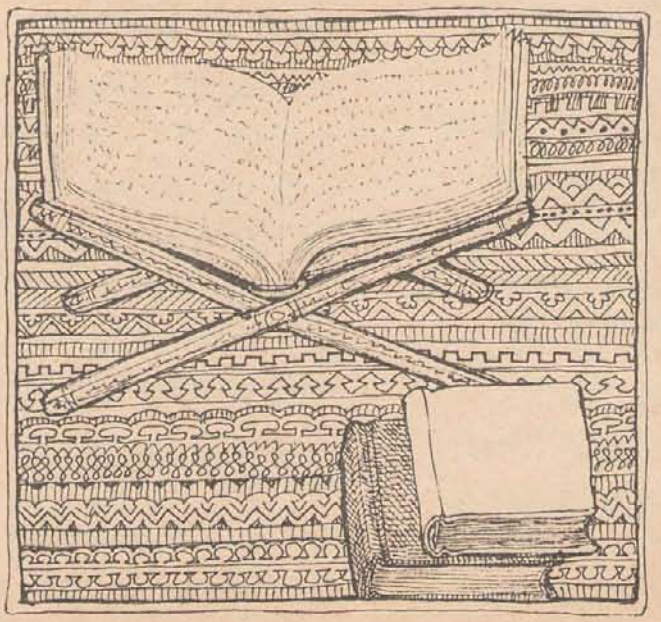

मासिक गोष्ठियों से....

"बच्चे जब कक्षा छठी में आते हैं तो उनकी विज्ञान में बहुत रूचि होती है, जोश होता है । लेकिन यह रूचि धीरे-धीरे कम होती जाती है ।"

"मालूम नहीं ऐसा क्यों होता है और बच्चों को कुछ अध्यायों में तो विशेषकर बोरियत होती है ।"

पूछने पर कि ऐसे कौन से अध्याय हैं, अलग-अलग नाम बताए गए । यहां नाम नहीं दे रहे हैं, महत्वपूर्ण यह है कि इसे कैसे सुधारा जाए ।

"क्या आप सभी शिक्षक यह नहीं बता सकते कि आप को कौन से तीन अध्याय सबसे प्रिय हैं, कौन से तीन सबसे अप्रिय और क्यों ? इसी तरह क्या बच्चों की पसन्द का अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता ?"

"बाल वैज्ञानिक इंटैलिजेंट बच्चों के लिए हैं । वही इसे कर पाते हैं । कमजोर बच्चों के लिए क्या करें ?"

"कक्षा छह में बच्चों को पढ़ना तक नहीं आता स्वयं पढ़ कर प्रयोग तो वह क्या करेंगे । सब कुछ बताना पड़ता है, समझाना पड़ता है और फिर प्रयोग करके दिखाना पड़ता है । इसके बाद ही उन्हें करने को कह सकते हैं ।"

"विज्ञान शिक्षक चुन कर लिए जाएं । सभी को क्यों विज्ञान प्रशिक्षण में बुलाया जाए व विज्ञान पढ़ाने को कहा जाए । कम से कम बी•एस•सी• पढ़े टीचर लिए जाएं और वह भी ऐसे जिन्हें विज्ञान पढ़ाने में रूचि हो । नहीं तो नो - सिखिए व रूचि न रखने वाले लोग बहुत गैर - जिम्मेदारी से पढ़ाते हैं और बच्चों को कुछ समझ नहीं आता । उन्हें मालूम ही नहीं कि सवाल का जवाब क्या देना है ।"

"टार्च सेल विद्युत के प्रयोगों के लिए ऐसे हों जिनका उपयोग हो सके, बच्चों से बार-बार कहना पड़ता है फिर भी वह सेल नहीं लाते और लाएं भी तो ऐसे जिनका उपयोग नहीं हो सकता । सेल ए•एफ• से खरीदने की अनुमति होनी चाहिए ।"

"विज्ञान इस तरह से पढ़ाना संभव है, उचित है और बहुत मज़ेदार भी है किन्तु इसके लिए विज्ञान पढ़ाते समय प्रत्येक कक्षा में दो शिक्षक रहें । इससे बच्चों से टोलियों में चर्चा हो पाएगी उन्हें किट दी जा सकेगी और सामूहिक चर्चा भी बहुत अच्छे ढंग से हो सकेगी ।"

"बड़े स्कूलों में जहां बहुत से वर्ग हैं, बहुत से शिक्षक हैं । सामान की आलमारी का चार्ज एक व्यक्ति के ही पास रहता है और उसे ढूंढ कर सामान लेने में बहुत मुश्किल होती है ।"

लोग सामान ले जाते हैं और पहले से बताते भी नहीं कि उन्हें क्या सामान चाहिए । ऐन वक्त पर आते हैं, कक्षा से बाहर बुला लेते हैं । जल्दी-जल्दी में सामान निकालते हैं और वापसी में न तो उसे गिनकर वापस करते हैं और न ही उसे अन्दर रखते हैं ।

बस ऐसे ही फेंक कर चले जाते हैं । मेरे पास भी समय नहीं होता कि सामान को संभाल लूं । पहले एक साथी थे जो मदद करते थे, मुझ में भी जोश था अब तो बस मन ही नहीं करता । साथी शिक्षकों को कितनी

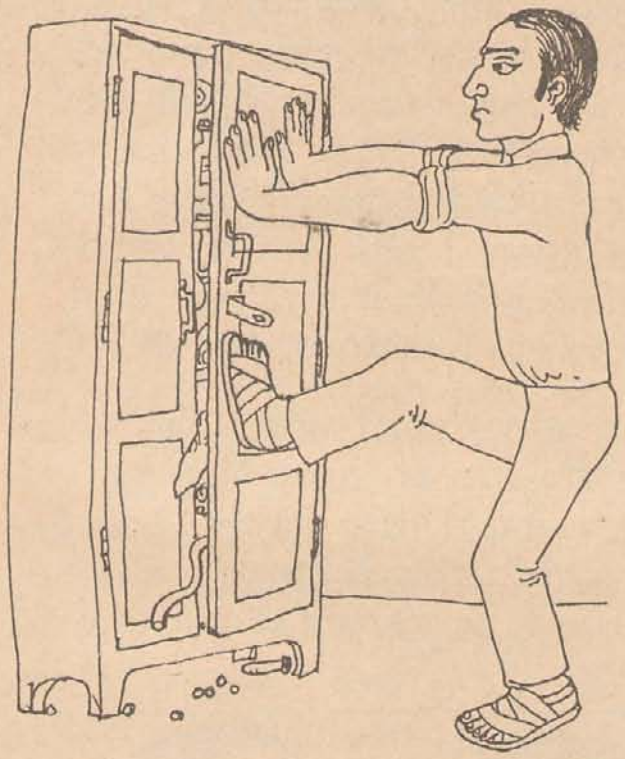

बार कहा लेकिन लोग सुनते नहीं हंस कर चले जाते हैं । अब तो मैंने भी करना बंद कर दिया ।"

"बड़े स्कूलों में एक-एक लैब एटेन्डेंट देना चाहिए । उससे एक व्यक्ति की जिम्मेवारी हो जाएगी । सामान देने की व लेने की ।"

"अरे हाई स्कूल तक में तो लैब एटेन्डेंट मिल नहीं पाते मिडिल स्कूल में क्या मिलेंगे । यह सब तो बातें हैं कहने की ऐसा कुछ हो तो सकता ही नहीं ।"

"अगर वास्तव में विज्ञान पढ़ाना है और प्रयोग करवाने हैं तो किट तो देनी ही चाहिए । कितने सालों से किट नहीं मिली । अब तो किट इधर-उधर से लेने की संभावना भी नहीं है क्योंकि कहीं भी किट नहीं है ।"

इस पर पाठकजी ने कहा की रसायन उपलब्ध हैं जिन्हें चाहिए ले जाएं, पिछली बार भी थोड़े ही लोग ले गए थे ।

"हरदा, होशंगाबाद की तरह यहां भी ए॰एफ॰ से किट खरीद सकते हैं अगर सब लोग इच्छुक हों तो यहीं पर अनेकों किट दी जा सकती हैं ।"

"कुछ किट सामग्री कम मिलती है और उससे संबंधित प्रयोग नहीं हो पाते, ये प्रयोग महत्वपूर्ण हैं । जैसे सूक्ष्मदर्शी और नपना घट । इसके अलावा शायद तराजू भी । यदि हर बच्चे को सूक्ष्मदर्शी का उपयोग सीखना है उसमें से देखना है तो 40 बच्चों पर एक सूक्ष्मदर्शी से बिलकुल काम नहीं हो सकता । प्रत्येक टोली पर एक सूक्ष्मदर्शी और एक नपनाघट होना चाहिए ।"

"इस विधि से पढ़ाने में हमें समय की दिक्कत आती है । कब सामान इकट्ठा करें, कब बांटें, कैसे कक्षा से लेकर जाएं और वापस आलमारी में जमाएं । कक्षा में विज्ञान से पहले का कालखंड खाली होना चाहिए जिससे शिक्षक सभी आवश्यक तैयारी कर सकें ।"

"हमें विज्ञान का ज्ञान नहीं है, किताब में जानकारी नहीं है, उत्तर नहीं हैं । प्रयोग में क्या होना चाहिए यह भी मालूम नहीं

है । अगर कक्षा में प्रयोग में कुछ नयी बात हो जाए तो हम क्या करेंगे । ज्ञान के अभाव में लगता है कि हम प्रयोग ही न करवाएं और चर्चा न करवाएं तो अच्छा रहे। जाने कब ऐसे सवाल आ जाएं जिनका उत्तर नहीं मालूम ।"

"इस में बहुत काम करना पड़ता है । सामान इकट्ठा करना, बांटना, प्रयोग करवाना, टोली में चर्चा करना, सामूहिक चर्चा, और भी न जाने क्या-क्या, लेकिन इसके लिए कुछ नहीं मिलता । न कोई भत्ता, न कोई इंक्रीमेंट और न ही कुछ प्रशस्ति या प्रमोशन में फायदा । फिर लगता है क्यों मेहनत करें यह तो बेगार का काम है । बाकी कक्षाओं में लोगों को इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती ।"

"हम पढ़ाने के प्रति गंभीर भी हों, तो क्या करें, कभी कुछ काम लाद देते हैं, कभी कुछ, इससे लिंक टूट जाता है । रजिस्टर भरना, पशु गणना और जाने क्या-क्या काम होते रहे हैं और शिक्षक कम । फिर हम गंभीरता से कैसे पढ़ाएं ?"

"अनुशासन नहीं रहता इसमें । बच्चे शोर मचाते हैं, तो प्रधान पाठक भी नाराज होते हैं । लेकिन अगर चर्चा के समय, प्रयोग के समय शोर न हो तो फिर प्रयोग ही कैसा ?"

"परीक्षा का डर हमेशा रहता है । बच्चों को मालूम नहीं कि परीक्षा में क्या पूछा जाएगी । क्या तैयार करना है ? किताब में से सवाल क्यों नहीं पूछते ? पुर्ननिर्धारण अंक बढ़ाने के लिए करते हैं । प्रयोगों की लिस्ट, प्रश्नों की लिस्ट क्यों नहीं देते ? ऐसी लिस्ट जिसमें से परीक्षा में पूछा जाएगा ।"

"पढ़ाएं तो क्यों, मेहनत करते हैं, प्रयोग करवाते हैं और चर्चा द्वारा उत्तर ढूंढे जाते हैं, फिर क्या होता है? जो शिक्षक बिल्कुल नहीं पढ़ाते वही कहते हैं कि करालो प्रयोग देख लेना हमारा रिजल्ट तुमसे अच्छा आएगा । और होता भी यही है, नकल करके उनके बच्चों का रिजल्ट बेहतर आ जाता है । पढ़ाने का क्या फायदा !

"लोग करना ही नहीं चाहते । मुश्किल से हाथ जोड़-जोड़ कर करवाये हैं ये टेस्ट आइटम और प्रायोगिक परीक्षा के प्रश्न पत्र । लोग यही कहते हैं,'तुम्हारे विज्ञान का काम है तुम ही करो हमें मत कहो करने को' ।"

इन सब विचारों को यहां प्रस्तुत करने का आशय यह नहीं है कि इन पर कोई टीप हम दें। पर हम सब स्कूलों में शिक्षा के सुधार में अपने प्रयास को किस-किस नज़र से देखते हैं, उसके बारे में सामूहिक रूप से एक बातचीत शुरु करने का प्रयास है। जिससे कि हम आगे बढ़ने की दिशा और उसके प्रमुख रोड़े पहचान, उनसे पार पाने का कोई तरीका सोच पाएं।

डिस्चिडिया पानी भरा कलश

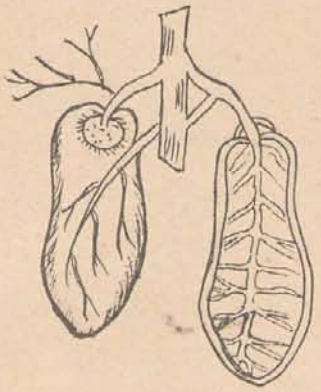

गर्मी के इन तपते हुए दिनों में पानी ही एक मात्र राहत है, जिसकी कमी एक समस्या बन जाती है । इससे निपटने के लिए सभी अपने-अपने स्तरों पर तैयारी करते हैं । गांव वाले कुंओं को गहरा करवाते हैं, शहर में नदियां व तालाबों का संग्रहित जल पीने के लिए उपलब्ध करवाया जाता है । सभी को यह लगा रहता है, कि हमारे ये सब स्त्रोत वर्षा के पहले कहीं सूख न जायें । आइये देखें की कुछ पौधे पानी की इस समस्या से कैसे निपटते हैं ।

सुन्दर वन के घने जंगलों में पाये जाने वाले डिस्चिड़िया नामक पौधे का पानी की कमी से छुटकारा पाने का बड़ा ही सुन्दर तरीका है । उसकी कुछ पत्तियां सामान्य पत्तियों की तरह चपटी न होकर कलशनुमा रचना में बदल जाती हैं, और इन्हीं कलशों, टंकियों में वर्षा का पानी एकत्रित रहता है, जो पौधे की आवश्यकतानुसार काम में लाया जाता है । पौधे को समय-समय पर पानी उपलब्ध कराने की यह व्यवस्था इसलिए जरूरी है, क्योंकि यह अन्य पौधों पर लगता है । इसका भूमि से कोई सम्पर्क नहीं होता, ऐसे पौधों को उपरिरोही कहते हैं । प्रकृति द्वारा इसकी जल पूर्ति के लिए की गयी यह व्यवस्था तारीफे काबिल है ।

ये कलश 5 से 9 से॰मी॰ लम्बे व 1·5 से 2·5 से॰मी॰ तक चौड़े होते हैं। पौधे की शाखाओं पर ये यहां-वहां लगे रहते हैं । इनका मुंह ऊपर की ओर खुलता है, जहां से तने से निकलने वाली जड़ें कलश के अन्दर प्रवेश करती हैं । ये जड़ें कलश के अन्दर एक जाल बना लेती हैं, कलशों की आन्तरिक सतह पर मोम की एक तह लगी होती है, जो इन्हें जलरोधी वाटर प्रूफ बना देती है । कलशों में कभी-कभी चींटियां कुछ सड़ती हुई वनस्पति भी लाकर जमा कर देती हैं । इस प्रकार पौधे को खनिज लवण भी मिल जाते हैं । चिंटियां इसमें सहजीवी के रूप में रहती हैं । पौधे व चींटियों के इस साथ को वैज्ञानिक मिरीकोफीली कहते हैं ।

किशोर पवांर
होल्कर साईंस कालेज, इंदौर

कुछ पिटे हुए अनुभव

अभी-अभी मेरा सामना ऐसे बच्चे से हुआ जिसकी स्कूल में जमकर पिटाई हुई थी। वैसे यह कोई पहली बार सामना नहीं हुआ था। मैं पहले भी ऐसे बच्चों के संपर्क में रहा हूं। और मात्र संपर्क की बात क्यों करूं, मेरी खुद की भी स्कूल में पिटाई हुई है। और ईमानदारी की बात तो यह है कि मैंने अपने छोटे भाई की बहुत पिटाई की। आज मैं उसके लिए बहुत शर्मिंदा हूं और आगे जो भी व्यक्त करूंगा वह उसी शर्मिंदगी को कम करने की और अपने छोटे भाई से क्षमायाचना की कोशिश होगी। तो मेरा सामना उस बच्चे से हुआ। गुड्डू! वैसे उसका नाम पंकज है। मैं जिस दिन उससे मिला - जनवरी में -उससे कुछ दिन पहले उसकी इतनी पिटाई हुई थी कि उसके गाल नीले पड़ गए थे। वैसे इससे भी भयानक पिटाई स्कूलों में होती है।

मैंने गुड्डू के नीले गाल नहीं देखे। उसकी मां से और अन्य लोगों से ही सुना। पर देखने की आवश्यकता नहीं है।

एक बच्चे के लाल-लाल गालों को नीला होते समझ पाना कोई मुश्किल बात नहीं है। और जब ऐसे दृश्य यदा-कदा देखने को मिलें तो ऐसे दृश्य की कल्पना करना बिलकुल मुश्किल नहीं है। गुड्डू से मैंने थोड़ी देर गप्प मारी, उसकी मां से बातें की। मैं पहली बार अंदर से हिल गया था। मुझे तब से रह-रहकर वह सारी मार याद आती रही जो मैंने खाई और अपने छोटे भाई को मारी।

इस बात पर तो बात की जा सकती है कि स्कूल में मार क्यों पड़ती है। इसके जितने समाज-आधारित कारण/बहाने हैं उन पर बात करना अपेक्षाकृत रूप से आसान है। पर मैं व्यक्तिगत बात ज्यादा करना चाहूंगा, जो मेरी पीड़ा है और जिसे मुझे आपकी पीड़ा बनाना है।

स्कूल में पहली तरह की पिटाई होती है कि मुझे कुछ आया नहीं, कोई सवाल, पहाड़ा, शब्दार्थ वगैरह और मास्टर ने हाथ उठाया और मार दिया। यह आम धारणा है कि स्कूल में पिटाई का प्रमुख (या एक मात्र) कारण यही होता है और यही पिटाई का एक मात्र स्वरूप। पर यह बिल्कुल गलत है। यह तो पिटाई का एक बहुत ही नगण्य-सा हिस्सा है। और मैं कहना चाहूंगा कि यह सबसे कम अपमान जनक है।

मेरे साथ ऐसा हुआ कि मेरे पिता सरकारी नौकर थे। दौरे पर जाते थे। मैं उनके साथ खजुराहो चला गया। दो-चार दिन स्कूल से नदारद रहा और जो कुछ सार्थक-निरर्थक पढ़ा था, भूल गया। जब कक्षा में पहुंचा, तो मास्टर ने पूछा कि सातवीं साध्य (प्रमेय) किसको आती है। जैसे हमेशा होता है, किसी ने हाथ नहीं उठाया। इतनी हिम्मत और आत्मविश्वास कहां होता है कि कि खुद शेर की मांद में जाएं। सबको मालूम है कि बाद में जिसका दुर्भाग्य होगा, शेर उसे खुद ही चुन लेगा। सो शेर ने चुन लिया मुझे। मुझे थोड़ा-थोड़ा याद आ रहा था कि सातवीं साध्य क्या है। मुझे बोर्ड पर खड़ा कर दिया।

अब मैंने ज्यामिति के नियम के अनुसार कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएं बोर्ड पर खींचीं और कुछ उलजलूल बातें "मानलो" का आग्रह किया। यह दो-एक मिनट चलता रहा। मेरा चेहरा तो बोर्ड की तरफ था, इसलिए मुझे कुछ नहीं मालूम। परन्तु सारी कक्षा को मालूम था कि मास्टर के हाथ की वक्र रेखा की छाप अब कहां बनने वाली है। बस इसी वक्त वह हादसा हुआ। मुझे अपने बालों पर तनाव महसूस हुआ और मैं तैरने लगा हवा में। फिर धम्म से गिरा। उसके बाद मेरे अंदर की पशु-बुद्धि ने मास्टर का चेहरा देखकर भांप लिया कि भागना चाहिए। और मैं भागा। आखिर उन्होंने पकड़कर मुझे दो झापड़ लगा ही दिये। वापिस खींचकर कक्षा की कर्मभूमि में लाए और सातवीं साध्य पढ़ाई, फिर चैन की सांस ली। पर मुझे शारीरिक चोट के सिवा कुछ नहीं लगा। मुझे शर्म नहीं आई। मैंने अपमानित महसूस नहीं किया।

मुझे आज तक यह घटना याद है पर कभी भी उन मास्टर के प्रति गुस्सा नहीं रहा। अन्य तरह की पिटाइयों का मुझे उस समय भी गुस्सा रहा और आज भी है। उस समय लगता था कि ये मास्टर को बाद में पत्थर मारूंगा। मास्टर लोग कृपया अन्यथा न लें। हो सकता है तब मेरे भाई को भी ऐसा ही लगा हो। पर इन सातवीं साध्य वाले मास्टर के प्रति मुझे गुस्सा नहीं है। आज मुझे लगता है कि उनके प्रति मुझे गुस्सा नहीं है।

उनके चेहरे पर कुछ था। मुझे सातवीं साध्य सिखा पाने में उनकी असफलता या मेरे अज्ञान पर उनकी हैरानी या और किसी कारण से वे खुद बहुत-बहुत गुस्सा और परेशान थे।

मुझे मारने के समय, मुझे लगा कि वे भी एक पीड़ा में से गुजरे। वह एक क्षणिक, तीव्र गुस्सा था जिसकी परिणति उस थप्पड़ में हुई। और उसी के साथ वह क्षण बीत गया। वह क्षण बीतने के बाद उन्होंने फिर

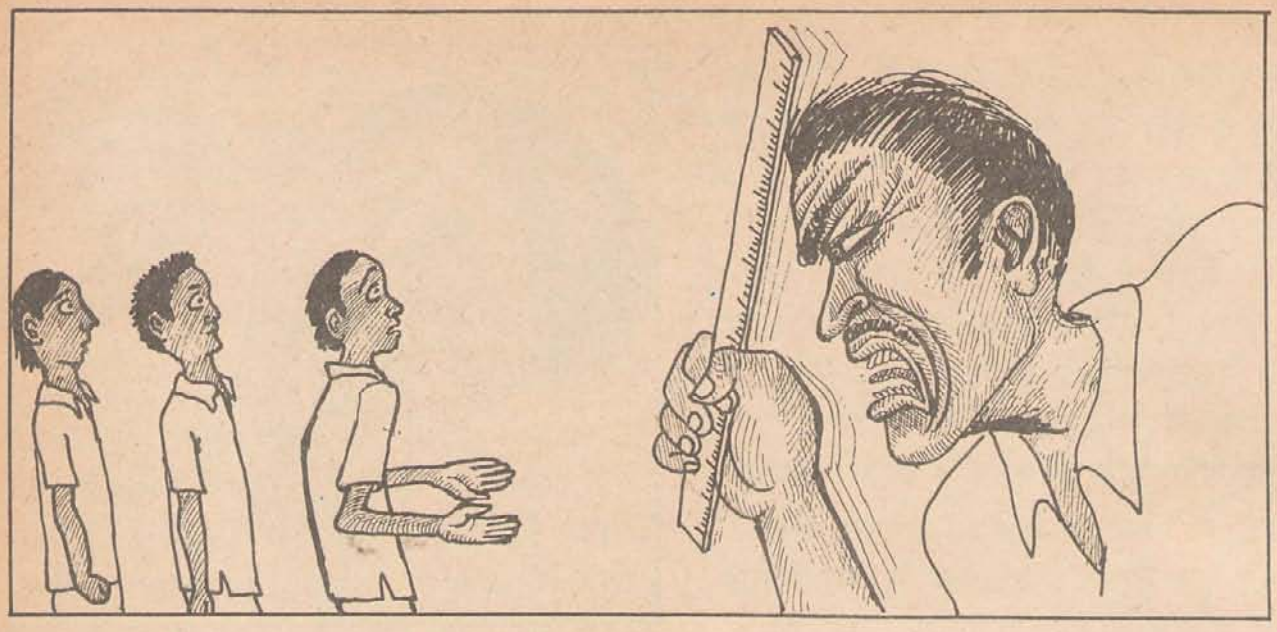

कोशिश की । इसमें मुझे नीचा दिखाने की कोई साज़िश नहीं थी । इससे ऐसा मत समझिये कि मैं इस तरह से मारने का समर्थक हूं । पर जब आप मेरे बाद के अनुभव सुनेंगे, तो कहेंगे कि "साध्य" वाले मास्टर ने तो क्या मारा ?

मेरा एक दोस्त है नरेन्द्र । उसने मुझे पिपरिया के उसके स्कूल की आप बीती बताई । उसे सुनकर इस बात से विश्वास उठ जाता है कि स्कूलों में पिटाई इसलिए होती है ताकि बच्चे ज्यादा अच्छी तरह सीख सकें । नरेन्द्र से जब भी उसके बचपन की बात हुई, उसने यह किस्सा जरूर सुनाया । किस कदर यह उसके जहन पर छाया होगा । उसके बचपन को किस तरह इस घटना ने प्रभावित किया होगा । बात किसी भी संदर्भ में निकले, नरेन्द्र यह किस्सा जरूर सुनाता है । उसके एक मास्टर थे । नरेन्द्र ऐसे नहीं बताता । नरेन्द्र कहता है - "मेरा एक मास्टर था"। खैर । वे क्या करते थे कि जिस बच्चे को उन्हें प्रताड़ित करना होता उसे अपने पास बुला लेते और उसकी बांह के किसी एक स्थान पर चिमटी से (उंगली की चिकोटी) से पकड़ लेते और पंद्रह-पंद्रह मिनटों तक धीरे-धीरे (हौले-हौले) सहलाते रहते । और साथ ही बड़ी शान्ति से, परम संतोष के साथ उस बच्चे से व अन्य बच्चों से बात करते जाते । कभी-कभी मुस्कराकर भी । और बच्चा लगातार चीखता रहता, घुटी-घुटी सी चीख । बच्चे की पेशाब निकल जाती, तो मास्टर मुस्कराकर उस पर भी अपनी भद्दी टिप्पणी करते ।

बच्चा सबके सामने, अपने सब साथियों हम-उम्रों के सामने इस तरह प्रताड़ित हो और मास्टर लगातार उसकी इस प्रताड़ना पर व्यंग्य करके उनको हंसाने की कोशिश करे, यह कितना अपमानजनक हो सकता है इसकी कल्पना करना मुझे दुर्भाग्य पूर्ण लगता है । ऐसे दृश्यों, ऐसे अपमानों की कल्पना करने को कहना ही मैं यातना मानता हूं । मैंने तीन-चार बार नरेन्द्र से पूरा किस्सा सुना है और हर बार मेरी इच्छा हुई है कि

उसे चुप रहने को कहूं । पर हर बार मुझे यह भी लगा कि उस समय तो हम पिटाई से इतने शर्मिंदा होते थे, इतने अपमानित होते थे कि किसी से बात तक नहीं करते थे, अब कम से कम मौका है कि बात करें ।

मुझे लगता है कि नरेन्द्र एक बार और मुझे वह बात सुनाएगा तो भी मैं मना नहीं करूंगा । ये मास्टर जब बच्चे का हाथ छोड़ते थे, तो वह स्थान नीला पड़ चुका होता था । मुझे आशा है कि नरेन्द्र के समान ही अन्य बच्चों में भी यह नीलापन मन में भी उतर गया होगा । क्योंकि यह पीड़ा ही तो हमारी पूंजी है । बहरहाल बात यह है कि क्या इस प्रकार की प्रताड़ना से सीखने का कोई सिद्धांत बनता है ?

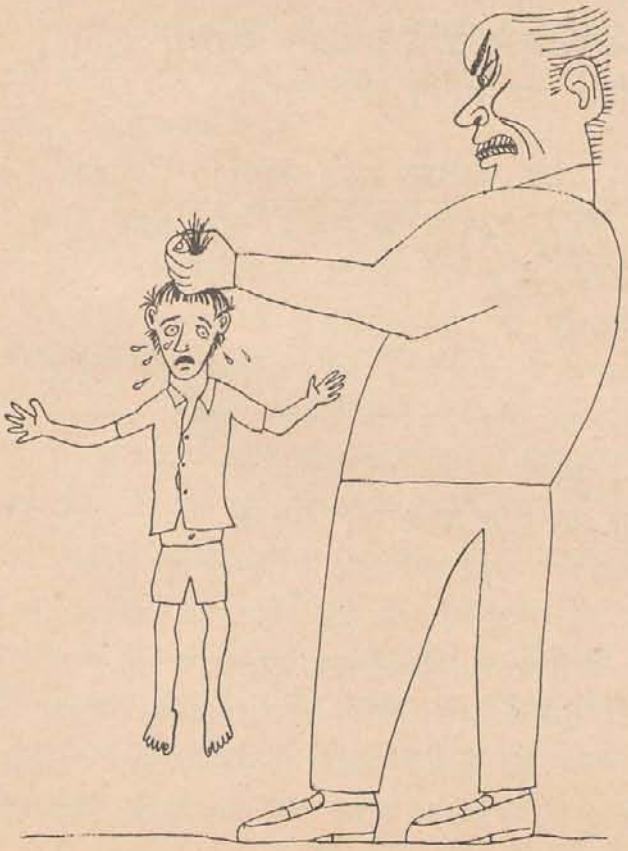

नरेन्द्र का उदाहरण उस श्रेणी में आता है, जिसे द्वितीय श्रेणी कहता हूं । परपीड़न की श्रेणी। शिक्षक लगातार पूरी प्रक्रिया के दौरान संतुष्टि महसूस करता है । उसमें बच्चे के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती, उसमें खुद की असहायता का भाव नहीं होता, उसमें कुछ सिखाने की तमन्ना नहीं होती । उसमें कुछ असहाय बच्चों को, आत्म-संतोष के लिए, दुख देने की बात होती है ।

आप अपनी-अपनी दास्तां सुनाइये कि कितनी बार ऐसी स्थितियों में से गुजरे हैं । ऐसे मास्टर पर गुस्सा आता है- साथ ही साथ खुद के छोटेपन का, उसके पंजे में कैद होने का अहसास आता है । अधिकांश बार यह स्थायी प्रभाव होता है । अपने कमजोर और दूसरे की दया पर होने का स्थायी अहसास । शायद यही इस मार का मकसद भी हो । इसीलिए तो जितना नरेन्द्र तड़पता था, जितना असहायता से छटपटाता था, मास्टर का जोश और संतोष बढ़ता था । यह है परपीड़नवादी तरीका या

मनोवृत्ति जिसे सेडिज़्म कहते हैं। इसे साद नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया था । इस फ्रांसिसी मनोवैज्ञानिक की मान्यता थी कि दूसरों को पीड़ा पहुंचाने से आनंद मिलता है ।

और मैंने कई-कई घटनाएं सुनी हैं जब ऐसी पिटाई मात्र इसलिए हुई है कि बच्चे ने पेशाब की छुट्टी मांगी । पिटाई होते-होते जब पेशाब छूट गई तो छुट्टी का कारण ही समाप्त हो गया । इसमें क्या सिखाया जा रहा था ? इसके कई घृणित रूप हैं ।

गंदे, एकदम गंदे । कई बार यह यौन उत्पीड़न के रूप में भी सामने आता है । मैंने एक गांव में लड़कियों को इसे भोगते देखा है । उनको स्तनों से पकड़कर ऊपर उठा देना और पटक देना, स्तनों पर चिमटी काटना जैसे घृणास्पद कर्मों को सहना पड़ता था । और शर्मिंदगी इस कदर कि किससे कहें ? मेरे कान को धीरे-धीरे मसला जाता था । और मूल्य यह कि मैं घर पर कहूं, तो डर है कि वे इसे मेरी गलती मानेंगे- जरूर मैंने कुछ किया होगा । मुझे मुर्गा बना दिया जाता था । दोनों कान पकड़कर । और ऊपर एक चाक, नहीं तो डस्टर, नहीं तो किताब रख दी जाती थी । पूरी कक्षा की तरफ मुंह करके मुर्गा बनना होता था । पूरे समय । और किताब गिरी, तो मुक्का मारते थे मास्टर । जब सजा खत्म होती थी तो पैर कांपते होते थे, चेहरा लाल हो जाता था, आंखों में जलन होती थी । चलना मुश्किल हो जाता था । मैं क्या सीख रहा था ? और यदि यहीं संतोष नहीं हुआ, तो अगले पीरियड के शिक्षक को बता दिया जाता था कि मुझे मुर्गा बने रहना है । हरेक क्षण मन में गुस्से और अपमान के सिवा कुछ नहीं होता था ।

मैंने मुर्गा बनकर कभी नहीं सोचा कि मुझे ज्यादा पढ़ाई करना चाहिए । मैंने सिर्फ यह सोचा कि मेरी बेइज्जती हुई है, और बदला लेने का मेरे पास कोई तरीका नहीं है । मेरी उंगलियों में पेंसिलें फंसाई गईं, मेरी उंगलियों के जोड़ों पर स्केल और डस्टर से मारा गया, मेरी उंगलियों के बीच पेंसिल फंसाकर उन्हें पकड़कर दबाया गया, मेरे सिर पर मारा गया ।

आज मुझे उन सबके कारण बिलकुल पता नहीं, बस मास्टर की सूरत और अपना दर्द याद है । हो सकता है गांधीजी की आत्मकथा या जन्म तिथि न याद होने पर मार पड़ी हो । और आज याद आता है कि एक विद्यार्थी को मार पड़ते समय बाकी हंसते न भी हों, तो भी खुद के भाग्य पर खुश जरूर हो लेते थे । कई बार तो मास्टर खुद कोशिश करते थे कि जिस बच्चे की पिटाई हो रही है उसे व्यंग्य का, मखौल का पात्र बनाया जाए । उसकी मूर्खता का बखान किया जाए या यहां तक कि दूसरे बच्चों से करवाया जाए । उसका एक अलग ही स्वरूप है जिसे मैं तीसरी श्रेणी में रखता हूं ।

हमारे एक मास्टर थे चौथी कक्षा में । उनका तरीका अद्‌भुत था । वे खुद हमें नहीं मारते थे । उन्होंने यह काम कक्षा के मॉनीटर को दिया हुआ था । अक्सर वे कक्षा में नहीं आते थे । मॉनीटर को कह देते थे कि कोई भी लड़का बोले, तो मुझे आकर बताना । वे वहीं से सजा सुनाया करते थे जिन्हें मॉनीटर क्रियान्वित करता था । यह इतना गंदा होता था । अपने साथी के साथ इतना गंदा रिश्ता । वह जाता और वापिस आकर बोलता कि तुम्हें बेंच पर खड़ा होने को कहा है । यदि खड़े नहीं हुए तो मास्टर से शिकायत करता था । फिर वहां पेशी होती थी । वहां फिर पिटाई होती थी । वह मास्टर खुद नहीं करते थे । मॉनीटर को कहते थे कि दो थप्पड़ लगा या चार मुक्के मार या पेंसिल उंगली में फंसा, वगैरह । और मॉनीटर तुरंत पूरे जोश से ऐसा करता था । बाकी के शिक्षक भी वहां होते । कभी-कभी हंसते । कभी-कभी मॉनीटर को कहते कि ठीक से नहीं मारा । यह तरीका बहुत घृणास्पद है ।

मेरे मन में कई बार आया कि अगले साल मैं मॉनीटर बनूंगा । और जोर से मारूंगा, साले को । पर आज मुझे दु:ख है कि मैंने ऐसा सोचा । पर उस समय मुक्के खाते हुए, रोते हुए, हमेशा लगता था कि मॉनीटर बनना है । हालांकि हम बाहर आकर हिसाब चुकता कर देते थे पर वह हिसाब सिर्फ शारीरिक चोट का होता था । उस अपमान का बदला तो बाहर मारने से नहीं चुकाया जा सकता । आज समझ में आता है कि वहशीपन के शिकार होने से अपमान नहीं होता और वहशीपन का बदला वहशीपन से नहीं चुकाया जा सकता । पर कितना अद्‌भुत तरीका है कि छात्रों को एक-दूसरे से भिड़ा दो और कितने गंदे दिमाग की उपज होगी यह । मुझे अब उस मानीटर पर दया आती है । यह उज्जैन के जैन स्कूल का किस्सा है ।

इसी श्रेणी के एक और तरीके को भी मैंने भुगता है । वह रीवा में हुआ था मेरे साथ या हमारे साथ । इस तरीके में बदला चुकाने के लिए मानीटर बनना जरूरी नहीं था । और यह उससे ज्यादा गंदा था । हमारे मास्टर शब्दार्थ पूछ रहे थे । लाइन से एक-एक से पूछते थे । जितने लड़कों को

नहीं आया वे खड़े रहते थे । जिस लड़के को
आ गया, वह इन सब लड़कों को एक मुक्का
मारता था । मुक्का मारने से पहले मास्टर
उसको बता देते थे कि जोर से मारना, नहीं
तो मैं तुमको उतने ही मुक्के मारकर समझाऊंगा
कि कैसे मारना है । हमेशा ऐसा होता था
कि मारने वाला जोर से मारने की अदा से
धीरे मारने की कोशिश करता । कई बार
धोखा देने में सफल हो जाता । जब सफल
नहीं हो पाता, तो फालतू की मार खाता ।
ऐसी दुविधा है-और कैसा भयानक तरीका
है । और हम धीरे इसलिए नहीं मारते थे
कि हमें अपने साथी छात्रों पर कोई दया
होती थी । हम तो धीरे इसलिए मारते
थे कि हमें मालूम था कि हमें भी सारे
शब्दों के अर्थ पता नहीं हैं ।

जो शिक्षा व्यवस्था सारे बच्चों को
सब कुछ सिखा नहीं सकती, वह सिर्फ सबको
बराबर सजा का ही तो प्रबंध कर सकती
है । पर हमें घृणा होती थी । मुझे याद
है कि मेरे सहित कई लड़कों ने अन्य को मारने
से इंकार करके मार खाई है । यह अमानवी-
करण की प्रक्रिया, यह वहशीपन की प्रक्रिया
हमारे अंदर किसी न किसी चीज का तो
कत्ल कर रही थी । कई बार हमने एक-दूसरे
को शब्दार्थ बताए भी, चुपके-चुपके । उसकी
पिटाई भी खाई । मुझे याद है हममें से हरेक
को मार खाने का और मारने दोनों का
मौका आया था । मुझे याद है जब हम में से
किसी को मारना होता था, तो हम झिझकते
थे । पर अन्ततः खुद को मार पड़ने के डर से
हाथ उठाना ही पड़ा ।

मैंने थोड़ी देर पहले लिखा कि हम
धीरे इसलिए मारते थे क्योंकि हमें अपनी
मारी का डर होता था । मुझे अब लग
रहा है कि मैंने गलत लिखा । हम कभी भी
दूसरों को, खासकर अपने साथियों को मारने
के लिए तैयार नहीं हो सकते थे । पर यह
तरीका कितना दर्दनाक है । किसने इजाद
किया और शिक्षा के किस सिद्धांत के तहत ?
और क्या सिखाने के लिए ? यही सहयोग
की भावना और सहकारिता का प्रतिबिम्ब
है ?

मैं पलिया पिपरिया गांव के कितने
ही युवकों को जानता हूं जिन्होंने पिटाई के
के कारण स्कूल छोड़ दिया । एक लड़के को
मास्टर ने इतना मारा कि उसका कान
उखड़ गया । जब उसके बाप ने स्कूल पहुंचकर
शिकायत की तो उसी मास्टर ने गाली -
गलौच की और सरपंच ने जुर्माना किया ।
इसके पीछे जरूर यह बात भी थी कि वह
बच्चा बसोड़ था और मास्टर-सरपंच दोनों
ब्राह्मण । तो नीची जाति वाले ने कैसे
उच्चतम जाति वाले पर टिप्पणी की, यह
भी विचारणीय मुद्दा था ।

ये सारी बातें लिखते-लिखते मैंने अपने
एक और मित्र कमल सिंह से बात की । उससे
मैंने पूछा था कि क्या कभी स्कूल में पिटाई
हुई है । उसकी बातें सुनकर मुझे जहां एक
ओर गहरा दुख हुआ वहीं दूसरी ओर एक
संतोष भी मिला कि उन सारी भावनाओं में
मैं अकेला नहीं हूं । उसने बताया कि जब
उसके मास्टर ने उसे "बेमतलब" मारा तो
वह स्कूल के दरवाजे पर ईंट लेकर खड़ा था
कि आज निकलने दो । वह तो मास्टर का
भाग्य है कि वह उस दिन थोड़ी देर से
बाहर निकला । इतनी देर में कमल का धैर्य
टूट गया । तो यह गुस्सा मेरे अकेले का नहीं

है । दूसरी बात जो उसने बताई वह और भी दर्दनाक थी । वह जिस स्कूल में पढ़ता था वह सहशिक्षा स्कूल था । जब लड़कों की पिटाई होती तो उनका हाथ टेबिल पर रखवाकर रूल से उंगलियों के जोड़ों पर मारा जाता । पर जब लड़कियों की पिटाई करनी होती तो मास्टर उनको अपने पास बुला लेता और शरीर के विभिन्न अंगों पर चिमटियां काटना, हाथ लगाना आदि जैसी क्रियाओं से उनको उत्पीड़ित करता । उस समय भी कमल समझ सकता था कि इनका संबंध यौन से है ।

शायद यह शब्द उसे तब मालूम न रहा हो ।

मेरे कम से कम दो अनुभव ऐसे भी हैं जिनमें हम लोगों ने संगठित रूप से इस सब का विरोध किया । पर वह फिर कभी सही । वैसे इनमें से एक घटना मैंने गुड्डू को लिख भेजी है । मेरा एक अनुभव है कि कैसे एक गांव के प्रायमरी के बच्चों ने संगठित रूप से इसका विरोध किया । पर यहां मैं उसमें जाना नहीं चाहता । यहां तो मैं सिर्फ यही बात करना चाहता हूं कि हम सबकी

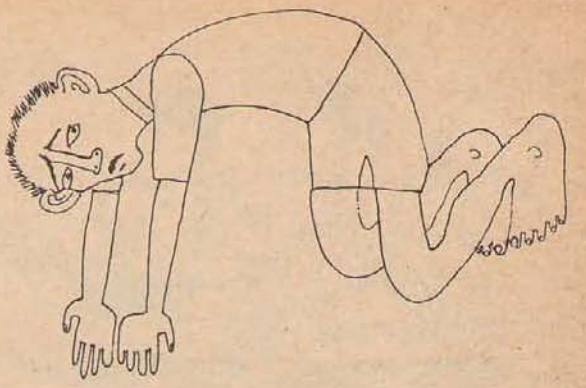

पिटाई हुई है, हम सबको गुस्सा आया है, हम सबने अपमानित महसूस किया है । पर अपना मौका आने पर हम नहीं चूकते । क्यों ?

मैं जानता हूं कि इस सबके पीछे सामाजिक, आर्थिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक कारण व ग्रंथियां हैं । पर फिर भी इसे स्वीकार करें क्या ? ऐसी सैद्धांतिक बहस से तो हर अपराधी को मुक्त किया जा सकता है । मैं उस सब पचड़े में नहीं पड़ूंगा । मैं तो आपसे व्यक्तिगत सवाल करूंगा - क्या आप अपने विद्यार्थियों को मारते रहेंगे या मारना बंद करेंगे ? और इसका जवाब समाज से नहीं आप से चाहूंगा । और "मैं नहीं चाहता लेकिन", किन्तु-परन्तु वाले जवाब न दें कृपया ।

— सुशील जोशी

परीक्षा आँखन देखी

परीक्षा का बुखार विद्यार्थियों को तो हो ही आया है, शिक्षक भी उससे अछूते नहीं ।

मानसिक स्तर पर पूर्णत: अपरिपक्व विद्यार्थी । बोर्ड की परीक्षा के भय से ग्रस्त शहरी-ग्रामीण क्षेत्र के बालक-बालिकायें । कहीं कोर्स पूरा है तो कहीं अधूरा, परीक्षा तो फिर भी देनी है न !

प्रतिभाशाली विद्यार्थी अपनी मेहनत से परीक्षा के लिए तैयार हैं, कुछ ने ट्यूशन के सहारे परीक्षा के भूत से लड़ने की तैयारी की है और कुछ की स्थिति डांवाडोल है ।

परीक्षा प्रारंभ हुई । केन्द्राध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान हैं किसी अन्य शाला के प्रधान पाठक/प्राचार्य/प्राचार्या/ व्याख्याता। चर्चा खुला । चेहरों पर ढेर सारी परेशानी कुछ देर बाद थोड़ी सी आश्वस्तता । लेखनी चली । कुछ नज़रें इधर-उधर, कुछ कापियों पर टिकी । निरीक्षक, पर्यवेक्षक, तेजी से घूम रहे हैं । कहीं पर कड़ी सतर्कता, कहीं थोड़ी बहुत नकल । उड़नदस्ता आ पहुंचा । हाल में सन्नाटा ।

यही क्रम हर दिन । आज परीक्षा की समाप्ति का दिन है । विद्यार्थियों के चेहरों पर थकान झलक रही है, मुक्ति की चमक । शिक्षक भी आश्वस्त हैं ।

कुछ टीका-टिप्पणी । कैसा रहेगा परीक्षा-परिणाम, पर्चे कैसे थे, कठिन, सरल, औसत ? प्रश्नों के घेरों में हर कोई घिरा है । उत्तर अभी अप्राप्त हैं ।

वक्त गुजरा । मूल्यांकन केन्द्र पर उपस्थिति । पेपर जांचने हैं । विरोधाभास को प्रकट करते, कुड़कुड़ाते शिक्षक कापी जांच रहे हैं ।
आज खुला है परीक्षा परिणाम । फला स्कूल का रिजल्ट शत-प्रतिशत, हमारी शाला का रिजल्ट ? कहीं खुशी, कहीं उदासी । विद्यार्थी और शिक्षक दोनों हैं, कहीं प्रसन्न कहीं उदास ?

रिजल्ट पर अप्रत्यक्ष में अनेक टीका - टिप्पणियां । तीन विषय में पूरक, दो में 32, 31 अंक हैं, काश इनमें 33 हो जाते तो एक में ही पूरक आती रहती । तीन विषय ! अब तो नैया डूबी ही समझो । एक साल बरबाद।
अरे यह क्या ! गणित में 27 अंक, यदि 28

अंक हो जाते तो 5 अंक के ग्रेस पर प्रोत्तीर्ण हो जाता बेचारा/बेचारी । अब करो सप्लीमेंटरी की तैयारी । आशा नहीं है पास हो जाना ।

एक छिपा असंतोष, एक दबा-दबा सा आक्रोश व्याप्त है चारों ओर । हायर - सेकेण्डरी वालों को ग्रेस के 10 अंक बेचारे माध्य॰ वि॰ के विद्यार्थी ।

कहीं डांट, कहीं क्रोध, कहीं तसल्ली । कुल मिलाकर, एक और मेहनत कर लो बेटा, अगले साल पास हो ही जाओगे । और फिर से एक साल के लिए कैद हो गया अपरिपक्व मानसिकता वाला छात्र, आठवीं बोर्ड के पिंजरे में ।

सुनीला मसीह
मित्र कन्या उ॰मा॰ शाला,
सोहागपुर

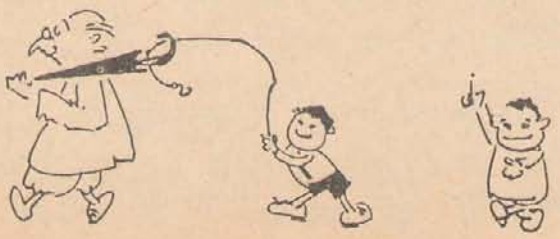

परीक्षा कुछ खट्टे मीठे अनुभव

एक स्कूल के सामने 16-17 वर्ष की उम्र के पांच-छह लड़के खड़े थे । जैसे ही हम (मैं एवं मेरा एक साथी) पहुंचे । उनमें से एक लड़का मुझे जानता था, उसने मुझसे पूछा आजकल क्या चल रहा है । मैंने कहा परीक्षा के माहौल में यह जानना चाहते हैं कि विद्यार्थियों में परीक्षा में नकल प्रवृत्ति क्यों है तथा इसे रोकने में शिक्षकों को क्या दिक्कत आती है । इतना कहना भर था कि एक छात्र ने एक शिक्षक का नाम लेकर गालियां निकालनी शुरू कर दी । साल भर कुछ पढ़ाया नहीं, प्राचार्य नकल करने देतेनहीं। हम कहां जाए ? इसमें हमारा क्या दोष है ?

1. प्रश्न यह है कि छात्र साल भर पढ़ाई क्यों नहीं करते । यदि कुछ शिक्षक नहीं पढ़ाते हैं तो विद्यार्थियों को चाहिए कि उसकी सूचना प्राचार्य, शिक्षा अधिकारी को देवें । बच्चों द्वारा पालकों को भी पढ़ाई संबंधित जानकारी देनी चाहिए । पालकों को चाहिए कि समय-समय पर स्कूल में जाकर

ाचार्य व संबंधित शिक्षकों से मिलें । यदि कूलों में कुछ शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते तो सका यह कतई मतलब नहीं कि नकल करके ास हो जाओ । इसका सीधा सा अर्थ है, क स्कूल में साल भर पढ़ाई ठीक होनी ाहिए । इसकी जिम्मेदारी प्राचार्य, शिक्षक, ालक व बालक सभी की है ! यदि कुछ चार्य या शिक्षक अपनी जिम्मेवारी अच्छी रह से नहीं निभाते हैं तो इसके लिए कुछ ालकों को मिलकर उनपर सामाजिक व शासनिक दबाव डालना चाहिए । वरना मारे बच्चे न घर के रहेंगे न घाट के ।

2. परीक्षा में नकल के कारणों संबंधित जन चेतना" देवास द्वारा छपा पर्चा बांटते मय एक शिक्षक साथी ने बताया किस शिक्षक, क्षा अधिकारी या पालक को यह नहीं मालूम कि नकल क्यों होती है । प्रश्न तो इसे रोकने ा है । लोग सब कुछ जानते हुए भी अनजान ने हुए हैं ।

आप यदि कीचड़ को साफ करना ाहते हैं तो उसमें घुसना होगा ही ! कीचड़ पास खड़े होकर मात्र चर्चा करके कीचड़ ाफ नहीं हो सकता । यह कीचड़ इतना फैल ाया है कि अब केवल शिक्षक या शिक्षा अधि-ारी साफ नहीं कर सकते । इसके लिए पालकों, ात्रों व शिक्षा से सीधे जुड़े सभी व्यक्तियों ो मिल जुलकर साफ करना होगा । अत: वेदनशील साथियों से अनुरोध है कि आओ मिलजुलकर कीचड़ को साफ करें ताकि शिक्षा पी उद्यान में फिर से फूल खिल उठें ।

3. एक शिक्षक साथी ने बताया कि हम बोर्ड की परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों ी पढ़ाई पर विशेष ध्यान देते हैं। स्थानीय परीक्षाओं में शैक्षिक स्तर का अधिक ध्यान न देते हुए विद्यार्थियों को पास कर देते हैं। इस कारण पांचवी, आठवीं व दसवीं में अधिकांश विद्यार्थी पढ़ाई के निर्धारित से कम स्तर के आते हैं । शिक्षक, पालक व विद्यार्थी को इस बोर्ड की परीक्षा देने वालों की संख्या कम करना अति अनिवार्य है। साथ ही साथ पालकों को शिक्षा के प्रति अपना रवैया बदलना होगा ।

4. एक शिक्षक ने बताया कि आजकल शहरों में ट्यूशन कम हो गई हैं, क्योंकि कोचिंग क्लॉसेस सस्ती पड़ती हैं । उन्होंने बताया कि कई कोचिंग क्लॉसेस तो स्कूल

के समय में भी चलती हैं । अत: विद्यार्थी स्कूल में न उपस्थित होकर कोचिंग क्लॉसेस में जाता है । इससे कक्षा में छात्रों की संख्या कम हो जाती है । इससे हमारा कक्षा में पढ़ाने का उत्साह भी कम हो जाता है ऐसी स्थिति में शिक्षा अधिकारी व स्थानीय प्रशासन को ध्यान देना चाहिए ।

5. कॉलेज के एक साथी ने बताया कि कुछ छात्र परीक्षा में परेशान करते हैं । बार-बार पानी मांगते हैं, यूरिनल जाते हैं या बैठे-बैठे

लिखते नहीं, इधर-उधर देखते रहते हैं हालांकि ऐसे छात्रों की संख्या बहुत कम होती है लेकिन इससे दिक्कत बहुत होती है । ऐसे माहौल में कालेज ने नियम बनाया कि एक छात्र परीक्षा में मात्र एक बार ही यूरिनल जा सकता है ।

6. एक शिक्षक ने कहा कि शासन व प्रशासन परीक्षा का परिणाम अच्छा चाहता है, पढ़ाई की किसी को चिन्ता नहीं । धीरे-धीरे ढर्रे में ढल कर परीक्षा में परिणाम अच्छा बनाने हेतु परीक्षा में नकल करवाना, मूल्यांकन के समय अंक बढ़ाना जैसे अनेकों हथकण्डे अपनाते हैं । हो सकता है ऐसे सोचने व करने वाले शिक्षकों की संख्या कम हो, लेकिन है तो बहुत घातक ।

7. एक शिक्षक ने कहा परीक्षा में नकल अकेला शिक्षक नहीं रोक सकता । इसमें पालकों का सहयोग चाहिए । परीक्षा के दिनों में पालकों को अपने बच्चों की दिनचर्या की जानकारी होनी चाहिए । क्या बच्चा पढ़ाई कर रहा है या परीक्षा में नकल करने हेतु चिट तैयार कर रहा है । यदि नकल करता पकड़ा जावे तो पालकों को बच्चे का पक्ष नहीं लेना चाहिए, उसे समझाना चाहिए, कि नकल करने के परिणाम बुरे होते हैं । बच्चे की प्राथमिक शाला पहली कक्षा से पढ़ाई करने की मानसिकता बनाने में सहयोग करना चाहिए ।

8. एक छात्र ने बताया कि परीक्षा खत्म होने के बाद जब बच्चे अपने घर जाते हैं तो पालकों को उनसे पूछना चाहिए कि तुम्हारे स्कूल में नकल तो नहीं हो रही, यदि नकल हो रही है तो पालकों को वहां के प्राचार्य को जानकारी देनी चाहिए । जो शिक्षक नकल

नहीं रोक सकते या रोकना नहीं चाहते परीक्षा में उनकी ड्यूटी न लगावें ।

रामनारायण स्याग

विज्ञान
के उपकरण
प्रयोगशाला में
औंधे पड़े हैं ।
विद्यार्थी
पास होने के लिए
हनुमान जी के
मंदिर में
खड़े हैं ।

अज्ञात

बच्चे फेल कैसे होते हैं

आपको याद होगा कि जान होल्ट अमरीका के एक जाने-माने शिक्षक व शिक्षाविद् हैं। बच्चों की शिक्षा के बारे में उन्होंने कई किताबें लिखी हैं। उपर्युक्त पुस्तक में उन्होंने अपनी डायरी के वे पन्ने प्रस्तुत किए हैं जो स्कूल में बच्चों को पढ़ाने के बाद वे लिखा करते थे। इन पन्नों में वे अपने अवलोकन, अपने अनुभव व अपनी स्थितियां लिखते थे।

10 मई 1958

बच्चे कई बार बहुत खुल के बता देते हैं कि अपने शिक्षक से उत्तर निकलवाने के लिए वे कैसी रणनीति उपयोग में लाते हैं।

एक बार मैंने एक कक्षा को ध्यान से देखा। शिक्षिका अंग्रेजी व्याकरण की क्लास ले रही थी। वह जांच रही थी कि छात्र संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि पहचानते हैं कि नहीं। श्यामपट्ट पर तीन कालम बने थे - संज्ञा, विशेषण, क्रिया। वह एक शब्द बोलती और छात्रों से पूछती कि यह शब्द किस कालम में आएगा।

अधिकतर शिक्षकों की तरह उसने भी अपने प्रश्न पर बहुत विचार नहीं किया था और उसे इस बात का आभास नहीं था कि कई शब्द एक से अधिक कालम में सही बैठ सकते थे। न ही वह यह समझ रही थी कि किसी शब्द का विशेषण, क्रिया या संज्ञा होना इस बात पर निर्भर करता है कि उसका वाक्य में कैसा उपयोग हुआ है।

उदाहरण के लिए शब्द संज्ञा और क्रिया दोनों हो सकता है - "वी प्लांट ट्रीज़ " We plant trees" और "The plant has grown" दी प्लांट हैज़ ग्रोन" इस तरह के न जाने कितने और उदाहरण सोचे जा सकते हैं।

खैर, क्लास में बच्चों को ध्यान से देखा तो उसी चिरपरिचित रणनीति का जम के उपयोग हो रहा था -

अगर शिक्षक के चेहरे से लगे कि उत्तर गलत दिशा में बढ़ रहा है तो बंधु, कोई दूसरा उत्तर बोलो और फिर देखो कि अब सही राह पर आए या नहीं ।
तो अपने आप पता चल जाता है कि सभी दिशा में उत्तर दे रहे हो या गलत ।

अधिकतर शिक्षकों के साथ तो बच्चों को और कोई रणनीति अपनाने की जरूरत ही नहीं पड़ती । 'शिक्षक का चेहरा देखते रहो और अन्दाज लगाओ' की यही चाल पर्याप्त रहती है ।
पर यह शिक्षिका अपने चेहरे को बड़ा भावहीन बनाए रखती थीं । तो "चेहरा देखो अन्दाज लगाओ" वाली नीति चल नहीं पा रही थी । फिर भी बच्चे कई दफा सही उत्तर पर निशान लगाने में सफल हो रहे थे । मैं सोचने लगा कि माजरा क्या है ? बच्चों की बातचीत, हाव-भाव से यह तो स्पष्ट था कि उनको समझ में कुछ नहीं आ रहा है । आखिर एक बच्ची ने कह दिया -
"मिस, आपको इस तरह हमेशा उत्तर की तरफ इशारा नहीं करना चाहिए,"
शिक्षिका बड़ी चकित हुई और बच्ची से पूछा कि क्या मतलब ? बच्ची ने अपनी बात समझाई, "मेरा मतलब, आप पूरा इशारा तो नहीं करती, पर मिस आप उत्तर के पास आ कर खड़ी हो जाती हैं ।"

बात अब भी स्पष्ट नहीं हुई क्योंकि शिक्षिका तो अपनी ही जगह पर खड़ी रह कर प्रश्न पूछ रही थीं ।

पर, जैसे-जैसे कक्षा का काम आगे बढ़ा, मेरी समझ में आने लगा कि लड़की क्या कहने की कोशिश कर रही थी ।
जैसे ही एक शब्द को उसके सही कॉलम में शिक्षिका लिखती थी उसके बाद वह इस तरह सीधी खड़ी होती थी मानो वह अगले शब्द को लिखने की तैयारी में हो । और उसके शरीर और श्यामपट के कोण से बच्चों को संकेत मिल जाता था कि अगला शब्द किस कॉलम में लिखा जाएगा ।
पर, सिर्फ यही संकेत नहीं था । हर तीसरे शब्द के बाद तीनों कॉलम बराबर हो जाते थे । यानी उसके प्रश्नों में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया के शब्दों की संख्या बराबर थी और वह एक के बाद एक इन्हें पूछती थी ।

यानि जब वह एक नई पंक्ति में उत्तर लिखना शुरू करे तो पहले उत्तर के आने के बाद, यह तय था कि दूसरे शब्द का उत्तर, दो खाली कालम में से एक ही होगा । और दूसरा सही उत्तर भरा जाने के बाद तो निश्चित ही था कि तीसरे शब्द का उत्तर तीसरा कालम ही है । बच्चे यह बात भांप चुके थे और इतनी जल्दी उत्तर देते थे कि कुछ समय बाद शिक्षिका सावधान हो गई और शब्दों को मिला-जुला कर पूछने लगी ताकि तीनों कालम बराबर न चलें । इस तरह उसने नन्हें चालबाजों का काम कुछ और कठिन कर दिया ।

इस सब के बीच में वैसी बातों का एक बड़ा ही स्पष्ट उदाहरण आया जो हम शालाओं में कहते हैं और जो बड़ी ही निरर्थक होती हैं और सोचने वाले बच्चे को भ्रमित करके असमंजस में डाल देती हैं । शिक्षिका जो कि अंग्रेजी में प्रशिक्षित थी, बच्चों को बता चुकी थी कि क्रिया वह शब्द है जो कोई काम होने की बात को दर्शाए । वैसे, यह हमेशा सही नहीं है । उसने बच्चों से जो शब्द पहचानने के लिए कहे थे- उसमें "ड्रीम" (स्वप्न या सपना देखना) भी था । यह घटना इसी शब्द से संबंधित है । शिक्षिका 'ड्रीम' (सपना) को संज्ञा के रूप में सोच रही थी । उसे इस बात का ख्याल नहीं था कि "ड्रीम" शब्द क्रिया भी हो सकती है । एक छोटे से लड़के ने अनुमान लगाते हुए कहा कि "ड्रीम" क्रिया है । यहां शिक्षिका ने अपनी तरफ से मदद करने की मंशा से बच्चे को समझाते हुए सवाल पूछा । मेरी राय में इस तरह के समझाने के प्रयत्न मदद करने की बजाए बाधा ही डालते हैं । "पर क्रिया में तो कुछ घटना होनी चाहिए । क्या तुम ऐसा एक वाक्य बना सकते हो जिसमें "ड्रीम" शब्द हो और कोई घटना हो रही हो ?" बच्चे ने थोड़ा सोचा और कहा "मुझे द्रोजन युद्ध के बारे में सपना आया था" इससे बढ़ के कोई घटना क्या घट सकती थी । पर शिक्षिका ने इससे सिर्फ यही कहा कि "गलत है" और वह भय और असमंजस भरे चेहरे के साथ चुप हो कर बैठ गया ।

शिक्षिका अपनी ही धुन में मग्न थी । वह इस फिराक में थी कि किसी तरह उसके दिमाग में छुपा हुआ "सही उत्तर" किसी तरह किसी बच्चे के मुंह से निकल तो पड़े । इसलिए "बच्चे की बात पर सोचने" की बात उसके दिमाग में आती भी तो कैसे । वह यह देख ही नहीं रही थी कि बच्चे का तर्क और चिन्तन उसके द्वारा बताई गई परिभाषा के अनुसार सही था और गलती बच्चे की नहीं शिक्षिका की अपनी थी ।

भावानुवाद: रश्मि पालीवाल

सवालीराम

☐ दूध का फटना और दही का जमना इन दोनों क्रियाओं में क्या अंतर है?
☐ विभिन्न प्राणियों के दूध में विभिन्न पदार्थों की प्रतिशत मात्रा क्या होती है?
☐ प्राणियों के शरीर में दूध बनने की क्या प्रक्रिया है?
☐ दूध का पास्चुरीकरण क्या है? ☐ दूध खट्टा क्यों हो जाता है?
☐ फटा हुआ दूध कच्चा या गर्म दूध से अलग क्यों दिखता है?

-रविशंकर सोनी, टिमरनी
-आर० पी० शर्मा, चांदौन

दूध के बारे में तुम लोगों ने ढेर सारे प्रश्न पूछे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर अलग-अलग न देकर एक साथ ही दे रहा हूं। यदि पढ़ने के बाद और प्रश्न दिमाग में आएं तो लिख भेजना।

सबसे पहले देखें कि दूध होता क्या है? दूध मुख्यत: कुछ पदार्थों का पानी में घोल होता है। ये पदार्थ हैं- वसा, प्रोटीन, लवण, विटामिन व लेक्टोज़ नामक शर्करा। आगे बढ़ने से पहले एक बात समझना जरूरी होगा। घोल दो प्रकार के होते हैं - एक तो वास्तविक घोल और दूसरे कोलायडी घोल। उदाहरण के लिए नमक को पानी में घोलने पर वास्तविक घोल बनता है। ऐसे घोल पारदर्शी होते हैं। किन्तु कुछ घोल ऐसे होते हैं जिनमें पदार्थ के कण तरल माध्यम में तैरते रहते हैं। ये घोल कोलायडली घोल कहलाते हैं और अपारदर्शी होते हैं। इन कणों के तैरते रहने के लिए लवणों का एक संतुलन बहुत जरूरी होता है। यह संतुलन बिगड़ते ही ये कण नीचे बैठ जाते हैं। दूध में दोनों ही प्रकार के घोल होते हैं। लवण और प्रोटीन तो वास्तविक घोल के रूप में होते हैं किन्तु वसा कोलायडी घोल के रूप में रहती है।

चूंकि दूध में सभी प्रकार के पोषक पदार्थ पाए जाते हैं, इसलिए यह एक संपूर्ण आहार माना जाता है। अपनी कक्षा-6 की बाल वैज्ञानिक के पोषण -1 अध्याय को देखो। उसमें संतुलित भोजन की बात की गई है।

अब देखें कि शरीर में दूध बनता कैसे है ? दूध बनने की क्रिया जिस समूह के प्राणियों में होती है उन्हें स्तनधारी कहते हैं । ये प्राणी बच्चे जनते हैं और अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं । दुनिया में लगभग 12000 किस्म के स्तनधारी प्राणी पाए जाते हैं । मादा स्तनधारी प्राणियों में कुछ विशेष रचनाएं होती हैं, जिन्हें दूध ग्रंथियां कहा जाता है । ग्रंथी का अर्थ होता है - किसी पदार्थ को तैयार करने के लिए बनी शारीरिक रचना/हमारे शरीर में कई ग्रंथियां हैं, जैसे- पसीना ग्रंथी, लार ग्रंथी; आंसू ग्रंथी आदि । वास्तव में दूध ग्रंथी पसीना ग्रंथी का ही परिवर्तित रूप हैं । ये ग्रंथियां आकार में काफी बड़ी थैलीनुमा होती हैं । इनमें वसा की बूंदें निकलकर तरल पदार्थों में घुल जाती हैं और दूध बनता है । यह तो तुम जानते ही हो कि कोई भी प्राणी (जैसे-गाय, भैंस आदि) लगातार हमेशा दूध नहीं देते । दूध तभी बनता है जब ये प्राणी बच्चा जनते हैं । इस क्रिया का नियन्त्रण एक अन्य पदार्थ द्वारा होता है । यह पदार्थ तभी पैदा होता है जब मादा बच्चे जनती है ।

अब जरा एक दृष्टि इस पर भी डालें कि अलग-अलग प्राणियों के दूध में क्या अन्तर होते हैं । इसको एक तालिका के रूप में नीचे दिया है ।

दूध में उपस्थिति (प्रत्येक 100 ग्राम में)

प्राणी	पानी ग्राम	वसा ग्राम	प्रोटीन ग्राम	शर्करा (लेक्टोज) ग्राम	लवण (राख) ग्राम
मानव	88·30	3·11 3·4 *	1·19	7·18	0·21
गाय	87·25	3·80 4·1 *	3.5	4·80 4·4 *	0·65 ·8 *
बकरी	87·8 88·8	3·82 4·52 *	3·21	4·54	0·55 0·8
भैंस	84·00 81·0 *	6·50 8·8 *	4·3	5·1	0·8
ऊँट	87·61 81·9 *	5·38 6·4 *	2·98 6·30 *	3·26 4·5 *	0·70 0·90 *

* टिप्पणी अगले पृष्ठ पर

उपरोक्त तालिका में प्रत्येक प्राणी के दूध में पाये जाने वाले पदार्थों की औसत मात्रा दी गई है । यह मात्रा प्राणी की नस्ल के अनुसार अलग-अलग हो सकती है । इसके अलावा एक ही नस्ल के विभिन्न प्राणियों में भी इन पदार्थों की मात्रा एक जैसी नहीं होती । इतना ही नहीं एक ही प्राणी के दूध में यह मात्रा मौसम एवं परिस्थितियों के अनुसार बदल सकती है । लेकिन अलग-अलग प्राणी के दूध में इन पदार्थों की मात्रा में एक स्पष्ट अंतर दिखाई देता है ।

★ तालिका में कुछ जगह पर अलग-अलग स्रोत से प्राप्त आंकडे दिये गये हैं । इन आकड़ों से अन्दाज लग सकता है कि एक ही प्रकार के प्राणी के दूध में अंतर हो सकता है ।

यह जानना बहुत जरूरी है कि हरेक प्राणी का दूध उसके बच्चों के लिए बढ़िया आहार होता है । यह जरूरी नहीं है कि एक का दूध अन्य प्राणियों के लिए भी उतना ही अच्छा हो । दूध के बारे में इतना कुछ जान लेने के बाद समझने की कोशिश करते हैं कि दूध का फटना दही जमना आदि क्रियाएं क्या हैं ?

दूध का फटना :

यह तो तुम जान ही चुके हो कि दूध में वसा कोलायडी अवस्था में होती है । यदि लवणों का संतुलन गड़बड़ा जाए तो यह नीचे बैठ जाऐंगे । वास्तव में दूध के फटने में यही होता है । दूध में कुछ जीवाणु उपस्थित होते हैं । कई बार ये जीवाणु हवा के साथ भी पहुंच जाते हैं । ये जीवाणु दूध में मौजूद लेक्टोज़ से क्रिया करते हैं और उसे लेक्टिक अम्ल में बदल देते हैं ।

इसी के कारण दूध खट्टा होजाता है

यह अम्ल लवण असंतुलन पैदा कर देता है और वसा एवं पानी अलग - अलग हो जाते हैं ।

इसके अलावा यदि हम अगर से दूध में अम्ल डाल दें तो भी यही क्रिया हो जाती है । नींबू के रस में अम्ल ही होता है । इसीलिए नींबू का रस निचोड़ने पर दूध फट जाता है ।

तुमने यह भी देखा होगा कि दूध को गर्म करके रखने पर वह ज्यादा समय तक खराब नहीं होता । यदि कच्चा दूध ही रख दें तो वह जल्दी ही खराब हो जाता है ।

जब हम दूध को गर्म करते हैं तो उसमें उपस्थित जीवाणु मर जाते हैं । हवा से जीवाणु पहुंचने में समय लगता है । जीवाणुओं की अनुपस्थिति में दूध देर तक खराब होने से बचा रहता है । दरअसल पैकेट में मिलने वाले दूध पर यही क्रिया की जाती है । इसीलिए वह देर तक टिका रहता है ।

दूध को तेज गर्म करके 15-20 सेकेण्ड तक गर्म रखकर धीरे-धीरे ठंडा करने को ही पास्चुरीकरण कहते हैं।

तुमने यह भी देखा होगा कि गर्मियों में दूध जल्दी खराब होता है । इसका कारण यह है कि गर्मियों में सामान्य तापक्रम 35-40 सेन्टीग्रेड ऐसा होता है जो जीवाणुओं की वृद्धि के लिए अच्छा है । इसलिए जीवाणु जल्दी-जल्दी प्रजनन करते हैं और दूध जल्दी खराब होता है ।

दही जमना :

इतना तो तुम्हें मालूम ही है कि दही जमाने के लिए हल्के गुनगुने दूध में थोड़ा सा दही मिलाकर रख दिया जाता है । वास्तव में दही जमने के लिए भी एक जीवाणु ही जिम्मेदार है । किन्तु यह जीवाणु दूध फाड़ने वाले जीवाणु से अलग होता है । दूध में मिलने पर यह जीवाणु वृद्धि करने लगता है । इसमें भी ठोस पदार्थ जम जाते हैं परन्तु यह क्रिया ज्यादा समरस होती है और पानी अलग नहीं होता । दही की खटास लेक्टिक अम्ल के कारण ही होती है ।

दूध में डालने से पहले यदि दही को गर्म कर दिया जाए या उबलते दूध में दही डाला जाए तो दही नहीं जमता । बता सकते हो क्यों ?

आखिरी बात । एक बात तुमने पूछी है कि पौधों से निकलने वाला दूध क्या प्राणियों के दूध का विकल्प हो सकता है ? तुमने एक कहावत तो सुनी ही होगी हर चीज़ जो चमकती है, सोना नहीं होती । तो पेड़ों वाला दूध भी वास्तव में वैसा दूध नहीं है कि जिसमें पानी मिलाकर बेचा जा सके । पेड़ों से निकलने वाले दूध को लेटेक्स कहते हैं ।

यह अधिकांशतः ज़हरीला होता है । यह एक प्रकार से पेड़ की सुरक्षा करता है । क्योंकि इसके कारण जन्तु इसे नहीं खाते। लेटेक्स से कई पदार्थ प्राप्त किए हैं, जो औषधियों के रूप में उपयोग किए जाते हैं । यह तो तुम समझ गए होगे कि लेटेक्स दूध का विकल्प नहीं हो सकता । पर उसके अन्य उपयोग हैं ।

हड्डियों के क्या उपयोग हैं?

राजेश कुमार रेवाकर
ओजवाडो, हरसूद

00 किसी भी लचीली या खोखली चीज की निश्चित आकृति बनाये रखने के लिए उसके अन्दर कोई मजबूत आधार का होना आवश्यक है । जैसे दशहरे में जलने वाले रावण के ढाँचे को मजबूत बनाये रखने के लिए उसके अन्दर बांस की खपच्चियां मजबूती देती हैं । बिना खपच्चियों से बनी पतंग बहुत ऊंचाई तक नहीं उड़ पाती। हमारे शरीर में और अन्य प्राणियों के शरीर में हड्डियां यह काम भी करती हैं ।

मकान की छत के लिए पहले लोहा बांधा जाता है । जो एक जालीनुमा ढाँचे के समान होता है । फिर इसके ऊपर सीमेंट और रेत आदि बिछाया जाता है । लोहे की छड़ें कंकाल की तरह छत को मजबूती प्रदान करती हैं । इसी तरह से सभी बड़ी इमारतों, पुलों आदि को बनाने में भी ढाँचे बनाये जाते हैं जो मजबूती प्रदान करते हैं । विशेषता यह होती है कि इनमें वजन संभालने की क्षमता बहुत होती है । इन्हें बनाने में यह कोशिश की जाती है कि इनका वजन बहुत अधिक न हो और इनमें बहुत ज्यादा सामग्री न लगे । क्या आप सोच सकते हैं ऐसी कोशिश क्यों की जाती है ?

इसके लिए ढाँचे के लिए पदार्थों को विशेष रूप से चुनते हैं । ऐसे पदार्थ चुने जाते हैं जो हल्के भी हों और मजबूत भी । हवाई जहाज बनाने के लिए विशेष रूप से ऐसी मिश्रित धातु बनायी जाती हैं, जो बहुत हल्के और मजबूत होते हैं । जैसे-निकेलायं , ये धातु, निकिल, कापर और ज़िन्क से मिलकर बनी है जो निकिल, कापर और जिन्क तीनों से बहुत अधिक मजबूत और भार में हल्की होती है ।

जीवों को भी अपना आकार बनाये रखने के लिए हल्के और मजबूत ढाँचे की जरूरत होती है । भारी ढाँचे से क्या दिक्कत होगी, क्या आप सोच सकते हैं ?

प्रारंभिक जीव एक कोशिकीय थे । छोटे-छोटे ये जीव अपने शरीर के आकार को बदल-बदल कर ही आगे बढ़ पाते थे, भोजन व अन्य क्रियायें करते थे । अमीबा ऐसा ही एक कोशिकीय जीव है जो सूक्ष्म-दर्शी में जैलीनुमा जीवद्रव्य का बना हुआ अनियमित आकार का दिखाई देता है, इसमें चलने के लिए अंग नहीं होते । जिस दिशा की ओर अमीबा को चलना होता है शरीर का जीवद्रव्य उसी ओर फिसलने लगता है और एक अंगुलीनुमा रचना बन जाती है जिससे अमीबा आगे बढ़ता है ।

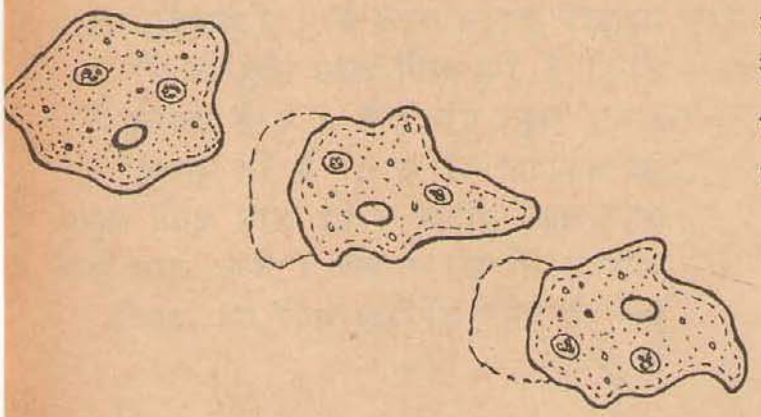

लेकिन अमीबा के समय के ही कुछ और एक कोशिकीय जीवों के शरीर के चारों ओर क्यूटिकल का बना महीन लचीला द्विस्तरीय आवरण होता है इसे पेजिकल कहते हैं। ये शरीर को एक निश्चित आकृति और सुरक्षा प्रदान करता है ।

इनका एक उदाहरण है-प्लाज़मोडियम जो मनुष्य में मलेरिया ज्वर उत्पन्न करता है । यह हंसिये के आकार का होता है ।

इन एककोशिकीय जीवों से द्विकोशिकीय और बहुकोशिकीय जीवों का विकास हुआ । बहुकोशिकीय जीवों के शरीर में बहुत सी कोशिकायें थीं । इन सब को भोजन, हवा आदि की जरूरत थी । इनका उचित क्रम में स्थित होना बहुत आवश्यक था। इसलिए कार्य के अनुसार कोशिकायें इकट्ठी होने लगीं । और प्रत्येक समूह को शरीर में एक निश्चित स्थान मिला । शरीर में प्रत्येक समूह को उचित स्थान पर स्थित रखने और मजबूती प्रदान करने के लिए विभिन्न जीवों में बहुत से अलग-अलग तरीके मिलते हैं । उदाहरणत: स्पंज एक समुद्री जीव है । इसमें कैल्सियम कार्बोनेट की बनी कंटिकाएं पायी जाती हैं जो शरीर को मजबूती प्रदान करती हैं ।

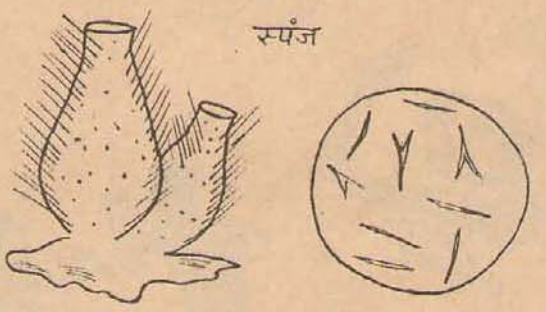

नदी किनारे रेत में छोटी-छोटी सीप और शंख मिलती हैं । यह भी जीवों की सुरक्षा का एक तरीका है । ये सब जीवों के खोल हैं । कैल्सियम कार्बोनेट का बना कठोर और मजबूत खोल शरीर को बाहरी आघातों से सुरक्षित रखता है ।

मलेरिया रोगाणु प्लाज़मोडियम

काकरोच, केकड़ा, तितली आदि से हम भली-भाँति परिचित हैं । इनके शरीर पर काइटिन का बना हुआ खोल पाया जाता है । जो बाहरी आघातों से शरीर की रक्षा करता है । खोल जीव द्वारा समय-समय पर बदला जाता है । चूंकि उपरोक्त खोल शरीर के बाहर पाया जाता है, इस-लिए इसे बाह्यकंकाल कहते हैं ।

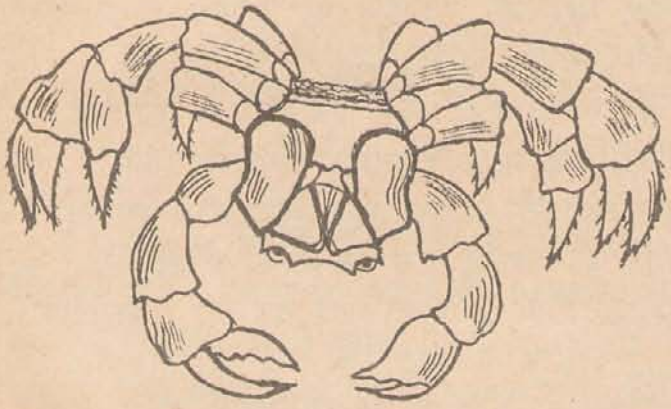

मेंढक, सांप, पक्षी, घोड़ा, मनुष्य आदि में कंकाल शरीर के अंदर होता है । यह हड्डी और कॉर्टिलेज से बनता है । कार्टिलेज का कंकाल सर्वप्रथम मछलियों की कुछ जातियों में पाया गया । अंतकंकाल के होने से प्राणियों में कई नई संभावनाएं विकसित हुई । मछली की कुछ कम विकसित जातियों में शरीर पर हड्डियों की प्लेटों का बाह्यकंकाल ही पाया जाता था । विकास के बढ़ते क्रम में मछलियों की कुछ विकसित जातियों में जबड़े और शरीर के आन्तरिक अंग भी विकसित हैं । इन में शरीर के अंग की सुरक्षा कार्टिलज से बने अंत: कंकाल द्वारा होती थी । यह उन्हें बाह्यकंकाल की अपेक्षा अधिक मजबूती देने में समर्थ था । कुछ जातियों में हड्डियों का कंकाल बना जो कार्टिलेज के कंकाल से मजबूत था ।

जरा समझने की कोशिश करें की कार्टिलेज और हड्डी होती क्या है ?

कार्टिलेज का आधार कान्ड्रिन नामक ग्लाइको प्रोटीन का बना होता है । इसमें महीन तंतु रहते हैं, बहुत सी छोटी-छोटी कार्टिलेज कोशिकायें द्रव्य में बिखरी होती है । तंतु की उपस्थिति के कारण कार्टिलेज लोचदार होता है । शरीर में कान के पिन्ना, नाक के सिरे एवं जीभ को छूकर देखो, यह लोचदार है क्योंकि यहां कार्टिलेज पाया जाता है ।

हड्डी में पाया जाने वाला आधार द्रव ओसीन नामक विशेष लीचीली प्रोटीन का बना होता है किन्तु इसमें केल्शियम एंव मैग्नीशियम के लवण जमा रहते हैं । इसी कारण इसका आधार द्रव कार्टिलेज की तुलना में अधिक कड़ा हो जाता है । इसमें तंतु भी पाये जाते हैं ।

अपनी अंगुली को मोड़ने की कोशिश करें,? क्या जोड़ों के अलावा और कहीं से आप इसे मोड़ पाए ?

कान के पिन्ने को हिलाने में और अंगुली मोड़ने में क्या आपने कोई अन्तर महसूस किया ? अंगुली के कठोर व सख्त होने का कारण उसके अंन्दर की हड्डी है । यदि हमारे बांह में हड्डी की जगह कार्टिलेज, होता तो शायद हमारी बांह बहुत ज्यादा लचीली होती । लेकिन इतना वजन हम नहीं उठा पाते ।

हमारे शरीर में बहुत सी हड्डियां हैं, जैसे बांह से हाथ तक में ही कई हड्डियां हैं । शरीर में आप कितनी हड्डियां महसूस कर सकते हैं ? हड्डियों का प्रयोग हम हर समय करते हैं ।

चलने में भी हम पिछले पैर से पृथ्वी को पीछे धकेलते और उसकी उल्टी प्रतिक्रिया से हमारा शरीर आगे धकेला जाता है और हम आगे बढ़ते हैं । इसमें भी टांग को हड्डी से एक मजबूती व कठोरता मिलती है जिससे वह पृथ्वी को धकेल पाती है कार्टिलेज की टांग अगर हमारा वजन संभाल भी लेती तो भी हम शायद चल और दौड़ नहीं पाते ।
कार्टिलेज और हड्डी में एक प्रमुख अन्तर है । हड्डी के बीच में एक खोखली नली (गुहा) होती है । इस नली में ही लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण होता है ।

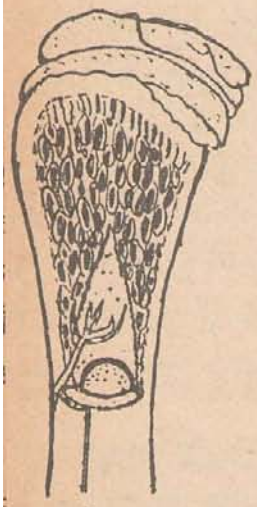

हड्डी की खड़ी काट

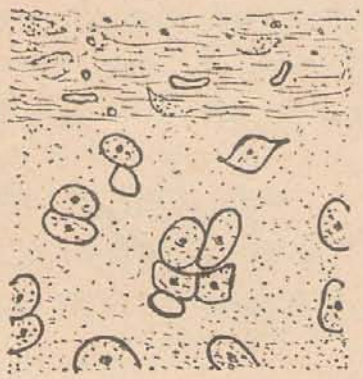

कार्टिलेज की आड़ी काट

हमारे शरीर की हड्डियों का ढांचा 206 हड्डियों से मिलकर बना है । ढांचे में हड्डियां, कार्टिलेज और रेशेदार सख्त ऊतक होते हैं । सभी हड्डियां एक दूसरे से विभिन्न जोड़ों द्वारा जुड़ी हुई हैं, इन्हीं जोडों के कारण शरीर गति करता है । जोड़ों के अंतिम सिरे कार्टिलेज से ढके रहते हैं ।

सबको मिलाकर देखने पर हड्डियों के ढांचे के बहुत से फायदे हमने देखे । यह ढांचा शरीर को एक निश्चित आकृति देता है, शरीर को मजबूती प्रदान करता है। यदि हड्डियां नहीं होतीं तो शरीर केवल मांस का लोथड़ा ही होता । उसमें बांह, टांग, अंगुली, अंगूठा आदि अंग इतने विशिष्ट नहीं बन पाते । हमारा चीजों को उठा पाना, मरोड़ पाना, औजार बना पाना सब हाथ और खासकर अंगूठे की रचना पर निर्भर है । जो कि हड्डियों के ढांचे का एक अनोखा उदाहरण है । शरीर के आंतरिक अंगों की सुरक्षा भी इस ढांचे के कारण हो पाई है । हड्डियों के ढांचे के बिना एक केन्द्रित दिल, रक्त परिवहन तंत्र या तंत्रिका तंत्र, केन्द्रित दिमाग की कल्पना नहीं की जा सकती है ।

जिस भी प्राणियों के अंत: कंकाल नहीं होता उनमें यह सब अंग या तो पूर्णत: अविकसित हैं, जैसे अमीबा, स्पंज आदि या फिर यह शरीर में फैले हुए हैं जैसे- केंचुए में हर खंड में गैंगलियोंन होता है जो संवेदना के संयोजन का कार्य करता है । कॉकरोच, मक्खी आदि के शरीर में कई, स्थानों पर हवा से गैस का आदान-प्रदान होता है । धीरे-धीरे कंकाल वाले जीवों में यह सब फेफड़ों में या फिर गिल्स में केन्द्रित हुआ । ऐसे ही और भी अंगों का केन्द्रीकरण हुआ जिनकी सुरक्षा के लिए शरीर में हड्डियों का ढांचा बना ।

परीक्षा की ज़रूरत ही क्या है आखिर

परीक्षा धीरे-धीरे अब बेशर्मी और देख कर लिख पाने की क्षमता का आकलन करने की ओर बढ़ती जा रही है । ऐसा प्रतीत होता है कि हमने दो विपरीत बातों को एक साथ मान लिया है ।

1. अगर बच्चों को खूब सारा न पढ़ाया गया और बहुत सी चीजें पाठ्यक्रम में नहीं रखी गई तो बच्चे पिछड़ जाएंगे ।

2. बच्चे सीखें हैं या नहीं, इस बात की जांच बच्चों के साथ अन्याय है ।

जिस नाव में मांझी छेदकर रहा हो उसे कौन पार लगा सकता है, उसमें बैठे हुए को कौन बचा सकता है । पहले यदा-कदा खबर मिलती थी कि अमुक बच्चा नकल कर रहा था । और अगर वह पकड़ा नहीं जाता तो उसे बहुत खुशी होती थी । फिर कभी मुश्किल पेपर आ गया तो कुछ बातचीत करने का मौका मिल जाता था । फिर शायद कुछ शिक्षक व प्राचार्य कुछ केन्द्रों पर नकल की इज़ाजत देने लगे । कैसी हेठी होती थी उनकी लेकिन । आज हम सब उतारू हैं बच्चों को बताने को । कुछ तो बोर्ड पर से लिखवाने को तैयार हैं, बात यहां तक है कि बच्चों की कापियों में खुद भी लिख देते हैं । ऐसा क्यों हो गया है ?

सभी का मानना है कि दूसरे नकल करवाते हैं तो फिर हमारे बच्चे क्यों पीछे रहें, उनका नुकसान नहीं होगा क्या ? पर मेरे दोस्त, क्या नुकसान उनको बेईमानी और चोरी सिखा के होगा या एक बार फेल हो जाने देने से ।

हम पाठ्यक्रम बढ़ाए रखना चाहते हैं । आठवीं के बच्चे को रामानुजन, खुराना या चंद्रशेखर बना ही देना चाहते हैं । प्रश्न पत्र बनाते समय भी खूब ध्यान रखते हैं कि सरल प्रश्न पत्र न बन जाए, फिर बनाने वाले की क्या खासियत । और इतना सब करने के बाद "बेचारे बच्चों" को गहन विश्वास के साथ बोर्ड पर सवालों के हल और उत्तर लिखाने शुरू कर देते हैं । क्या करें प्रश्न पत्र ही ऐसा है । इतने मुश्किल सवाल हैं । यह हिस्सा क्यों पूछ लिया ? क्या पाठ्यक्रम कम नहीं हो सकता ? क्या प्रश्न पत्र आसान नहीं बन सकते ? क्या ज्यादा बच्चे पास होने लायक नहीं बन सकते ? क्या ट्यूशन कम नहीं हो सकती ? या फिर हम स्कूलों में तय करके औपचारिक तरीके से बेईमानी सिखाना ही चाहते हैं ।

हम कहते हैं कि हम बच्चों को सिखाने का प्रयास करते हैं, मेहनत करते हैं, पर यह समझते ही नहीं । पढ़ना ही नहीं चाहते । और लगातार हर साल देखने के बाद, असफलता के बाद बात वही है कि बच्चे पढ़ते ही नहीं । यह सही भी हो तो भी क्या हमारी हिम्मत है कि अगर बच्चों को प्रेरित न कर सकें, तो स्कूल ही बंद कर दें । अगर स्कूल बच्चों को यह अहसास दिखाने के लिए ही हैं कि वे नालायक हैं और चोरी व भ्रष्टाचार के अलावा आगे बढ़ ही नहीं सकते, साथ ही यह भी कि वे ही नहीं सभी ऐसा करते हैं । और वही जो नकल करते हैं अच्छे अंक लेते हैं – तो उसके लिए इतनी मेहनत क्यों ? इतने सब विषयों का आडम्बर क्यों ? आप एक ही विषय रखिए नकल कैसे करें, भ्रष्ट कैसे बनें । और पढ़ाइए ।

मैं जानता हूं कि मेरी बात लोगों को खल रही होगी, और मेरे कुछ मित्रों को चुभ रही होगी । शायद उन्हें लग रहा हो मैं ज़्यादती कर रहा हूं । यह सब अतिशयोक्ति है । शायद है, लेकिन अपवादों को छोड़ कर परिस्थिति इससे बहुत बेहतर नहीं है । जैसे हमने धीरे-धीरे रिश्वत को, बख़्शीश को सामान्य जीवन का हिस्सा मान लिया है, वैसे ही पर्चे से करीब-करीब मिलता हुआ गेस पेपर, उसके बाद नकल व डिक्टेशन और फिर कापी जांचने वाले ढूंढने का प्रयास यह सब भी सामान्य हो जाएगे । अपवाद बन जाएगे, नकल न करने वाले मेहनती छात्र और परीक्षा को एक परीक्षा के रूप में लेने वाले शिक्षक ।

अगर हम औपचारिक रूप से नकल को स्वीकार लेंगे तो फिर परीक्षा के बाद मेरे दोस्त मुझे आकर नकल होने की कहानियां नहीं सुनाएगे । नहीं बताएगे वे कि अमुक स्कूल में नकल हुई । और मैं उन बच्चों के सामने शर्मिन्दा नहीं होऊंगा, जिन्हें मैंने हर अवधारणा को समझने की कोशिश करने को कहा था । और उन बच्चों से आखें नहीं चुराऊंगा, जिन्होंने मेहनत की थी, रात-रात बैठ कर पढ़े थे । उस मासूमियत से नहीं छिपूंगा जो दुनिया में ईमानदारी से जीना चाहती है और मानती है कि ईमानदारी और मेहनत ही सही रास्ता है । मैं सोच भी नहीं सकता उन बच्चों पर क्या गुज़रती होगी जो दिन रात एक करके मेहनत करते हैं और पाते हैं कि बगल में रहने वाला ट्यूशन शस्त्रयुक्त उन से ज्यादा अंक पा रहा है ।

अब हमने प्रशासन के हर स्तर पर थोड़ी बहुत रिश्वत खोरी और भाई-भतीजावाद को तो स्वीकार ही लिया है । फिर परीक्षा में ही ऐसा क्या है ? और फिर अगला कदम है, लूट-खसोट और खून को स्वीकार करना । शायद परोक्ष रूप से आज भी लूट है, लोगों पर दबाव है, उन्हें सताया जाता है । लेकिन इनसे अभी भी दिल दुखता है, नाराज़गी होती है । अभी स्वीकारते नहीं इसे सभी लोग ।

मैं परीक्षा नहीं चाहता, मैं इतना अधिक पाठ्यक्रम नहीं चाहता, मैं बच्चे पर दबाव नहीं चाहता । लेकिन इन सब को बदलने के स्थान पर बेईमानी । मुझे वो ठीक नहीं लगती । क्या आपको लगती है ?

शायद हम समझते हैं कि बच्चों को नकल करवा कर हम उनकी मदद कर रहे हैं उनका साल बचा रहे हैं । पर मुझे तो लगता है कि हम उसका जीवन ही बर्बाद कर रहे हैं । उसकी दुनिया में आस्था खत्म कर दे रहे हैं । अगर वास्तव में हमें बच्चों की फिक्र है और हमें लगता नहीं की उन्हें साल भर रोकना चाहिए, तो हम फिर पास-फेल की प्रथा बंद करने की बात क्यों नहीं करते ? परीक्षा क्या कर सकती है, क्या कर रही है हमने देख लिया । क्या उससे झलकते निष्कर्षों को स्वीकारने की हिम्मत है हम में । और उसका विकल्प खोजने के प्रयास करने का धैर्य ?

-हृदयकांत दीवान

सवाल मासिक गोष्ठी का

"साल दर साल मासिक गोष्ठियां होती ही जा रही हैं ऐसा लगता है कि इन से जो तात्पर्य था वह हल नहीं हो रहा । लोगों की जो दिक्कतें हैं उनके कुछ भी हल नहीं मिलते ।"

"ऐसा नहीं की हमें सब कुछ आता है और कक्षा में कोई ऐसी परिस्थितियां नहीं होतीं जहां हमारे सामने ऐसे सवाल न आएं जिनके जवाब हमें मालूम नहीं । हां उसी समय कोई हो तो पूछ भी लें । लेकिन बाद में याद नहीं रहता ।"

शायद इनका आशय है कि सवाल इतना महत्वपूर्ण नहीं बन पाता कि उत्तर पाने के लिए जिज्ञासा रहे ।

"हम जब स्कूलों में जाते हैं तो पाते हैं कि बहुत सी चीजें शिक्षकों को नहीं आतीं लेकिन वे इस बात को छिपाना चाहते हैं । नहीं चाहते कि और लोगों को मालूम पड़े ।"

"अनुवर्तनकर्त्ता से तो हम बहुत कुछ पूछ लेते हैं लेकिन मासिक गोष्ठी में जाने क्यों नहीं पूछ पाते ।"

"पहले भी कितने प्रशिक्षण अटेन्ड किए । सभी में प्रशिक्षण दिया और बस । हमें स्वयं पर विश्वास था, अपने प्रशिक्षण पर विश्वास था । यह नया ही प्रशिक्षण है कि हर महीने आओ, बैठो और जाओ । ज़रूर आपके कार्यक्रम में कुछ दोष है जिससे कि आप इतना करते ही जा रहे हैं ।"

"मासिक गोष्ठी में अगर काम की बातें हों तो अच्छा लगता है अक्सर लोग उल-जलूल बहस में उलझ कर, उलझा कर समय खराब करते हैं । इस पर बहुत कोफ्त होती है कि स्कूल भी छोड़ा और यहां भी कुछ नहीं हुआ ।"

"मासिक गोष्ठी में लोग समय पर नहीं आते । एक-एक घन्टा देर से आते हैं । हमीं समय पर आकर बैठ जाते हैं अगली बार से हम भी देर से आएंगे ।"

"आपको मासिक गोष्ठी में अनुशासन भी बढ़ाना चाहिए । कभी कुछ, कभी कुछ लगा ही रहता है । लोग जब चाहे आकर बैठ जाते हैं । जब चाहे चले जाते हैं । रोकना चाहिए, शिकायत करनी चाहिए ।"

"मासिक गोष्ठी में आकर कम से कम एक दूसरे से मिल लेते हैं बातचीत कर लेते हैं । अच्छा लगता है यह सब ।"

"अगर मासिक गोष्ठी में शैक्षिक मुद्दों को उठाया जाए जो स्कूलों से आए हैं, उन शिक्षकों की दिक्कतों के हैं, तो बहुत अच्छा होगा । आपके द्वारा मुद्दे चुनना ठीक है लेकिन कभी-कभी जरूरत के बाहर की बात हो जाती है ।"

"आप बहुत ज्यादा अपेक्षा कर के मुद्दे डिसकस करते हैं और खुद ही बहुत बोलते रहते हैं । हमारे स्तर की गोष्ठी नहीं होती ।"

"नापना-नापना कब तक नपवाते रहेंगे आप लोग । वही-वही करते बोर से हो जाते हैं ।"

"मासिक गोष्ठी शिक्षकों का एक मंच है और बहुत जरूरी है ।"

"हमें मालूम है कि आप हमारी समस्याओं का हल नहीं करवा सकते फिर भी यह भड़ास निकालना बहुत ज़रूरी है । जो घुटन है हमारे में उसे आप को सुनाना जरूरी लगता है । कम से कम आप सुनतो लेते हैं । एक उत्साह सा मिलता है इसे बांट कर । और कोई सुनता ही नहीं । मासिक गोष्ठी बंद नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह बहुत जरूरी है ।"

"और भी जाने कितनी ही बातें मासिक गोष्ठी में हम सब ने कहीं, समझीं और फिर आगे बढ गए । लेकिन सवाल वही है कि मासिक गोष्ठी क्यों? हम चाहते हैं कि आप अपने विचार हमें लिखें ताकि इसमें आगे सोच हो सके । इनके सुधार के लिए और इनके आगे के स्वरूप के लिए । क्या यह होनी भी चाहिए या नहीं ?"

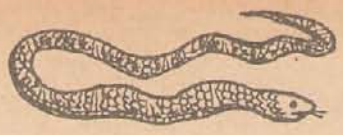

सांप और हम

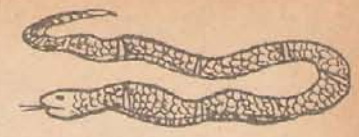

* सब सांप घातक नहीं हैं ।
भारत में सांपों की लगभग 2500 जातियां हैं, जिनमें से सिर्फ 50 खतरनाक हैं ।

* डर से भी आदमी मर सकता है / डर भी जहर है ।
ऐसे कई प्रामाणिक उदाहरण हैं जिनमें सांप ने काटा ही नहीं, सिर्फ भ्रम हो गया कि सांप ने काटा है और घबराहट के मारे शरीर में वे सारे लक्षण मौजूद हो गये जो घातक सांप के काटने पर होते हैं ।
ऐसी स्थिति में डर से आदमी मर भी सकता है ।
जब मन का वहम बिना जहर के मार सकता है, तो मन की शक्ति क्या विष से बचा नहीं सकती ?

* सांप के काटने पर मौत जरूरी नहीं ।
सांप के काटे हुए लोगों में से कम से कम 30 प्रतिशत लोग, इलाज न होने पर भी नहीं मरते क्योंकि :

  अधिकतर सांप घातक नहीं होते ।
  घातक सांपों की विष थैली में हर समय विष नहीं होता ।
  थैली में विष हो तो भी हो सकता है कि हड़बड़ी और डर के मारे सांप पूरा विष उड़ेल न पाया हो ।
  सांप का काटा हर व्यक्ति उचित इलाज के द्वारा बचाया जा सकता है ।

* सांप के बच्चे में विष -
विषैले सांप के बच्चे में जन्म से ही विष होता है, लेकिन कम मात्रा में । इसीलिए बहुत छोटी आयु के सांप के काटने से आदमी के मरने की संभावना कम है ।

* दौड़ने के मामले में सांप -
हमारे देश के तेज से तेज दौड़ने वाले सांप जैसे डाइरडेंगवा, तक्षक और धामन भी आदमी से तेज नहीं दौड़ सकते । सांप के प्रति बना हुआ डर ही आदमी को दौड़ने नहीं देता ।

  कुछ सांप ऐसे भी हैं जो विषैले हैं पर आदमी को जान के लिए खतरा पैदा नहीं कर सकते क्योंकि विषदंत मुंह में काफी पीछे की ओर रहते हैं ।

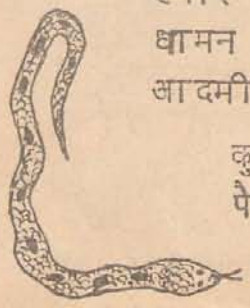

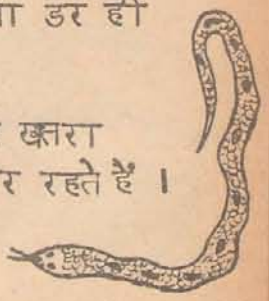

विष से दवा

शायद आपको आश्चर्य हो, पर यह सच है कि सांप के विष से अनेक दवाएं बनती हैं। चूँ तो सांप का विष आदमी की जान ले सकता है, पर उसी में सौ गुणा या हजार गुणा पानी मिला दिया जाए तो किसी रोगी की जान बचा भी सकता है। पुराने जमाने से ही इसका उपयोग दवा बनाने में होता आया है। उदाहरणतया आयुर्वेद में "सूचिकाभरण रस" का वर्णन है जो नाग के विष से बनता है। इसका उपयोग हैजा और टी॰बी॰ के इलाज में किया जाता था। इसी प्रकार बेहोशी, मिर्गी, श्वेत रोग, आतशक आदि रोगों के उपचार में भी सांप के विष, खून आदि का उपयोग होता था।

सांप के विष से अनेक आधुनिक दवाएं भी बन रही हैं। भारत में बम्बई के हैफ्किन इंस्टिट्यूट तथा केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान, कसौली (हिमाचल प्रदेश) में विषैले सांपों को पाल कर उनका विष निकाला जाता है। इससे सांप के विष को मारने वाली दवा ए॰वी॰एस॰ तो बनती ही है, अन्य दवाएं भी बनती हैं। जैसे, नाग का विष एक हजार गुणा पतला कर देने पर दर्दनाशक का काम करता है। कैंसर के इलाज में भी इसकी उपयोगिता की जांच की जा रही है। विभिन्न प्रकार के सांपों के विष से बहुत तरह के एन्ज़ाइम और अन्य रसायन प्राप्त होते हैं, जिनको अलग-अलग करके रसायन-शास्त्र के शोध-कार्य में भी उपयोग किया जाता है।

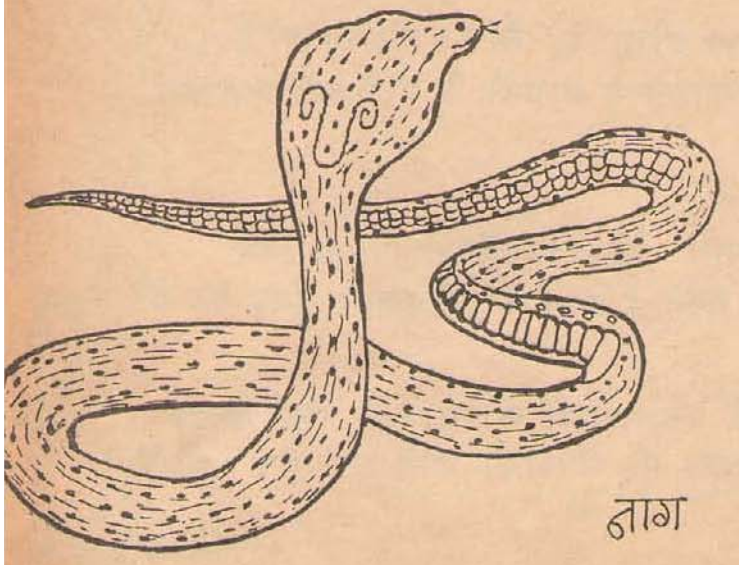

नाग

विष चढ़ने की पहचान

पहचान के लिए पहले तो काटे गए व्यक्ति पर सांप के दांतों के निशान देखने चाहिए। विषैले सांप के काटे में दो बड़े-बड़े विषदन्तों के निशान होते हैं और बाकी छोटे निशान होते हैं। यदि एक ही विषदन्त गड़ा हो तो एक ही बड़ा निशान होगा। यदि सांप विषैला नहीं था तो विषदन्त के निशान नहीं होंगे। पर कई बार ये निशान साफ दिखाई नहीं देते।

घातक सांप काटने के 8-10 मिनट के भीतर विष के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। कुछ लक्षण स्थानीय कटे हुए अंग पर और कुछ शरीर के दूसरे भागों में होते हैं।

नाग के काटे स्थान पर दर्द और जलन तो मामूली होता है। एक छोटी लाल गिल्टी सी हो जाती है। आधे घंटे बाद नींद आने लगती है या नशा-सा होता है और टांगे लड़खड़ाती हैं। घंटे-पौने घंटे के बाद बहुत कुछ आने लगता है, कै भी हो सकती है। जीभ

सुन्न हो जाती है और गला भी सूज जाता है । व्यक्ति न ठीक से बोल सकता है, न खा सकता है । धीरे-धीरे बोलने-चलने की शक्ति पूरी खत्म हो जाती है, पर बेहोशी नहीं होती, सांस धीमी और हृदय की गति तेज हो जाती है । अन्त में 5-10 घंटे में दौरे पड़ने लगते हैं या बिना दौरों के भी सांस रूक जाती है और मृत्यु हो जाती है ।

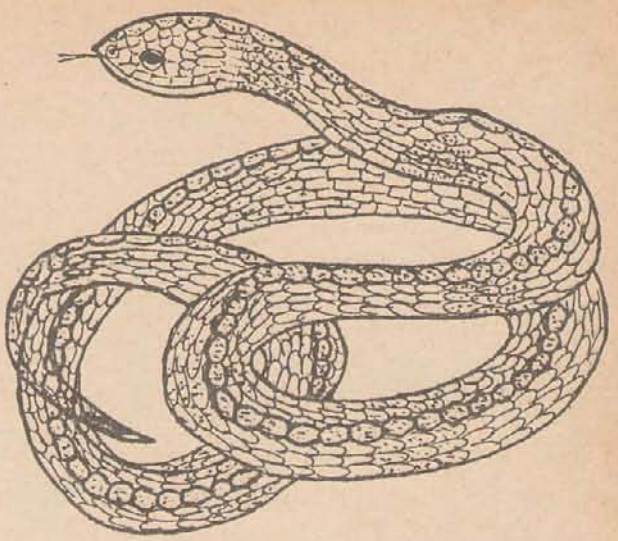

करैत

कराइट या दोरहा के काटने पर भी लगभग ऐसा ही होता है, सिर्फ काटे हुए स्थान पर सूजन या दर्द नहीं होता । (इसीलिए कई बार धोखा हो जाता है । हो सकता है कि लक्षण कई घंटे बाद प्रकट हों ।) नींद और नशा अधिक होता है और अन्त की स्थिति में पेट और जोड़ों में खूब दर्द हो सकता है । लक्षण प्रकट होने के बाद मृत्यु होने में देर नहीं लगती ।

जाड़ा के काटे अंग में लगभग शुरू से बहुत दर्द होता है । आसपास की चमड़ी गर्म हो जाती है । पन्द्रह मिनट के भीतर सूजन शुरू हो जाती है । मांस का रंग बदल जाता है, घाव और छाले हो जाते हैं । कै होने लगती है, पसीना आता है । पेशाब, पाखाना, कै और थूक में खून आ सकता है । आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं और व्यक्ति बेहोश हो जाता है । घाव के आसपास पस भर जाता है और मांस गल कर गिरने लगता है । पूरा अंग मरने लगता है । दो-तीन दिन में मृत्यु हो सकती है, पर लकवा नहीं मारता ।

अफाई के काटे के लक्षण भी लगभग ऐसे हैं, सिवाय इसके कि स्थानीय दर्द तो कुछ कम होता है, पर जोड़ों में दर्द उठ सकता है । मसूढ़ों, घावों और पेशाब में खून बहता है । बाद में शरीर के भीतर भी खून बहने लगता है । इस हालत में व्यक्ति कई दिन ज़िन्दा तो रह सकता है, पर खून बहने से कमजोरी आ जाती है और कई प्रकार की समस्याएं उठ सकती हैं ।

ध्यान दें कि काटे हुए अंग के ऊपर कपड़ा या रस्सी बांधने से भी सूजन हो जाती है, पर यह सूजन ठंडी है और विष के कारण जो सूजन होती है, उसमें गर्मी होती है ।

सांप का विष और उसका प्रभाव

सांपों का विष एक गाढ़ा पाचक रस है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रोटीन, एन्जाइम, पाचक रसायन, लवण आदि रहते हैं । थोड़े से रस में भी रसायन इतनी अधिक मात्रा में होते हैं कि हमारे शरीर के क्रिया-कलापों में बाधा डाल

करते हैं । मोटे तौर पर साँप का विष दो कार का होता है । पहला, जो नाग और राइट में पाया जाता है, तन्त्रिकाओं पर सर करता है । सबसे पहले कंठ जाम हो जाता । व्यक्ति न कुछ बोल सकता है, न निगल कता है । यदि इलाज न कराया जाए तो ांस खींचने से संबंधित तंत्रिका जाम हो सकती , जिससे मृत्यु हो जाती है ।

दूसरे प्रकार के विष से खून जमने की प्रक्रिया ड़बड़ा जाती है । जैसे, नसों में बहता हुआ न जम सकता है, या घाव से बहता हुआ खून हता ही रहता है, जमता नहीं । यह गड़बड़ ारे शरीर में होती है । इससे मृत्यु भी हो कती है । साथ ही यह विष काटे हुए अंग की ांसपेशियों और खून को भी नष्ट करता है । ाड़ा, अफाई और सारूनाग का विष इसी कार का है ।

डॉक्टरी इलाज

अस्पताल में ले जाने पर काटे हुए व्यक्ति का बंधन खोला जाता है और तुरन्त ए•वी•एस• की सुई दी जाती है । फिर कई-कई घन्टे के बाद सुइयां दी जाती हैं जब तक कि दर्द, सूजन, बेहोशी, नशा आदि सभी लक्षण दूर न हो जाएं । सुई बाजू की नस में दी जाती है । पर यदि जाड़ा या अफाई ने काटा हो तो इसके साथ-साथ काटे हुए अंग में भी सुई दी जाती है, ताकि वहां के मांस और खून को विष नष्ट न कर दे ।

ए•वी•एस• का अर्थ है ऐंटी वेनम सीरम अर्थात विष-मारक सीरम ।(जमे हुए खून का द्रव भाग सीरम कहलाता है) यह घोड़े के खून से तैयार किया जाता है । सुई द्वारा घोड़े के शरीर में थोड़ा-सा सर्प-विष देते हैं- इतना थोड़ा कि घोड़े को बहुत नुकसान न हो । इससे उसके खून में अपने आप विष-मारक पैदा हो जाते हैं ।

किन्तु कुछ लोगों को घोड़े के खून से एलर्जी होती है । ऐसे व्यक्ति को ए•वी•एस• की सुई देने से वह मर भी सकता है । ऐसी स्थिति में कुछ और विधि अपनाने की जरूरत होती है।

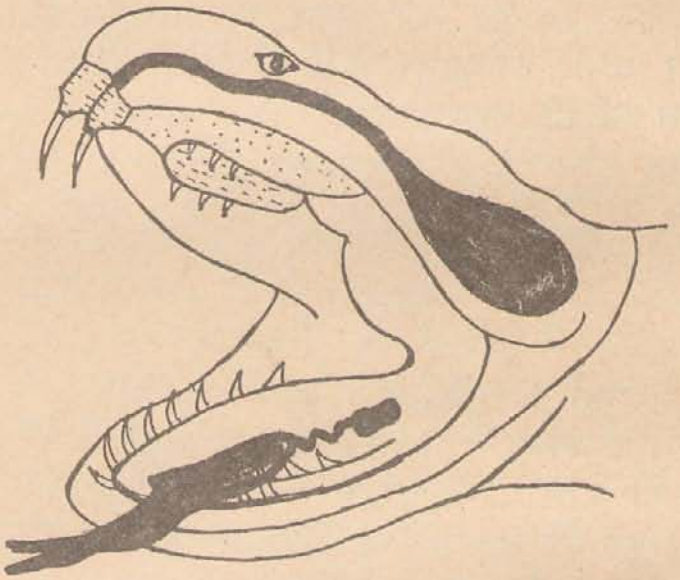

रोगी को खून या पानी भी चढाना पड़ सकता है । यदि जाड़ा या अफाई के काटने के कारण मांस गलने लगा हो तो उसका भी इलाज करना होगा । अधिक खून बह जाने के कारण अन्य परेशानियां भी हो सकती हैं, जिनके इलाज में बहुत दिन लग सकते हैं । साँप काटे व्यक्ति को अस्पताल पहुंचाने में जितनी देरी की जाएगी, उतने ही लम्बे इलाज़ की जरूरत पड़ेगी ।

'साँप और हमारा जीवन' से साभार

प्राशिका की कविताएं

मैं तोता हूँ
लंबी तान के
सोता हूँ

मिस्टर चूहा सूट पहनकर
निकले घर से बाहर
बंधी गले में टाई उनके
चश्मा था आँखो पर
उठा साइकिल भागे दफ्तर
चौराहे तक आकर
औंधे मुंह गिर पड़े सड़क पर
रिक्शे से टकराकर

बंदर ने दो आम तोड़े
गुठली खाई छिलके छोड़े
गले में उसके अटकी गुठली
खों खों करे पर बाहर न
निकली.

बकरा खींच रहा है गाड़ी
कितनी लंबी इसकी दाढ़ी
कहने को तो है यह बकरा
पर देखो तो इसका नखरा
पेशावर से आया है
एक अमीर इसे लाया है
घास नहीं बिल्कुल खाता
काजू और अखरोट उड़ाता

एक डाल पर बैठा बंदर
भीग रहा पानी के अंदर
चिड़िया बोली बंदर मामा
यहाँ नहीं था तुमको आना
बना नहीं घर भीग रहे हो
आछी-२ छींक रहे हो
सुन मामा को गुस्सा आया
चिड़िया का घर तोड़ गिराया
चूं चूं चूं चूं चिड़िया रोई
बैठ डाल पर वो भी सोई.

चौके मे लग गई आग
सारे बर्तन निकले भाग
थाली भागी झन् झन् झन्
भागी कटोरी टन् टन् टन्
गिलास भागा टन् टन् टन्
धूं धू करता निकला धुंआ
सारे बर्तन सी सी करते
डिब्बा भागा ढम् ढम् ढम्, मटका गिरा धड़ाम

आ इ ई उ ऊ ...

प्राथमिक शिक्षण कार्यक्रम के प्रशिक्षण शिविर में तैयार की गई कविताएँ

वन-विकास के तीस वर्ष
(1956-1986)
मध्य प्रदेश के वन आर्थिक -सामाजिक विकास की कुंजी हैं ·

इन वनों से -

0- कोई तीन अरब रूपया राजस्व के रूप में मिलता है ·

0- आठ करोडं मानव - दिवस का रोजगार मिलता है ·

0- एक अरब रूपया की निस्तार सुविधाएं दी जाती हैं ·

0- एक अरब रूपया मजदूरी और वनोपज -खरीदी के रूप में वितरित होता है

0- 11 राष्ट्रीय और 31 अभ्यारण्यों के माध्यम से वन्य प्राणियों का संरक्षण किया जा रहा है ·

0- कोई तीन दर्जन उद्योग वनों पर आधारित हैं ·

0- वन,भूमि और जल का संरक्षण करते हैं ·

आइये,

नए सिरे से वन-संरक्षण का व्रत लें ·

हरियाली से ही खुशहाली - वृक्षों की रक्षा कीजिए ·

सू0प्र0सं0 8802/1986

डाक पंजीयन क्रमांक जे-2/म0प्र0/33/22 दिनांक 5/12/86 होशंगाबाद

एकलव्य,ई-1/208,अरेरा कालोनी,भोपाल व्दारा प्रकाशित एवं भंडारी आफसेट प्रिंटर्स भोपाल व्दारा मुद्रित ·

संपादन एवं वितरणः एकलव्य,कोठी बाजार, होशंगाबाद 461 001